सांख्य संसार

सांख्य, योग एवं वेदान्त का रोमांचक सम्मिलन

कुंडलिनी जागरण के रूप में प्रकृति-पुरुष का वैवाहिक महोत्सव

प्रेमयोगी वज्र

सांख्य संसार

सांख्य, योग एवं वेदान्त का रोमांचक सम्मिलन

कुंडलिनी जागरण के रूप में प्रकृति-पुरुष का वैवाहिक महोत्सव

प्रेमयोगी वज्र

वैधानिक टिप्पणी (लीगल डिस्क्लेमर)

इस तंत्र-सम्मत पुस्तक को किसी पूर्वनिर्मित साहित्यिक रचना की नक़ल करके नहीं बनाया गया है। फिर भी यदि यह किसी पूर्वनिर्मित रचना से समानता रखती है, तो यह केवल मात्र एक संयोग ही है। इसे किसी भी दूसरी धारणाओं को ठेस पहुंचाने के लिए नहीं बनाया गया है। पाठक इसको पढ़ने से उत्पन्न ऐसी-वैसी परिस्थिति के लिए स्वयं जिम्मेदार होंगे। हम वकील नहीं हैं। यह पुस्तक व इसमें लिखी गई जानकारियाँ केवल शिक्षा के प्रचार के नाते प्रदान की गई हैं, और आपके न्यायिक सलाहकार द्वारा प्रदत्त किसी भी वैधानिक सलाह का स्थान नहीं ले सकतीं। छपाई के समय इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि इस पुस्तक में दी गई सभी जानकारियाँ सही हों व पाठकों के लिए उपयोगी हों, फिर भी यह बहुत गहरा प्रयास नहीं है। इसलिए इससे किसी प्रकार की हानि होने पर पुस्तक-प्रस्तुतिकर्ता अपनी जिम्मेदारी व जवाबदेही को पूर्णतया अस्वीकार करते हैं। पाठकगण अपनी पसंद, काम व उनके परिणामों के लिए स्वयं जिम्मेदार हैं। उन्हें इससे सम्बंधित किसी प्रकार का संदेह होने पर अपने न्यायिक-सलाहकार से संपर्क करना चाहिए।

पुस्तक परिचय:

“सांख्य संसार~ सांख्य, योग एवं और वेदान्त का सम्मिलन: कुंडलिनी जागरण में प्रकृति-पुरुष का अद्‌भुत एवं नाटकीय वैवाहिक महोत्सव”

इस लघु पर सारपूर्ण पुस्तक में प्राचीन भारतीय दर्शन के तीन प्रमुख मार्गों - सांख्य, योग और वेदान्त - का अद्वितीय सम्मिलन प्रस्तुत किया गया है। लेखक ने कुंडलिनी जागरण की प्रक्रिया को प्रकृति और पुरुष के अद्‌भुत एवं नाटकीय वैवाहिक महोत्सव के रूप में चित्रित किया है, जो आत्मा और शरीर के बीच की गहन यात्रा को दर्शाता है।

मुख्य विशेषताएँ:

- **सांख्य दर्शन**: प्रकृति और पुरुष के द्वैत को समझाने वाला यह दर्शन, आत्मा और पदार्थ के बीच के संबंधों को स्पष्ट करता है।
- **योग**: आत्मा की शुद्धि और कुंडलिनी जागरण की प्रक्रिया को विस्तार से समझाया गया है।
- **वेदान्त**: अद्वैत वेदान्त के सिद्धांतों के माध्यम से आत्मा और ब्रह्म के एकत्व को दर्शाया गया है।

पुस्तक का उद्देश्य: यह पुस्तक पाठकों को आत्मज्ञान की दिशा में मार्गदर्शन करती है, जिससे वे अपने भीतर की ऊर्जा को जागृत कर सकें और जीवन के उच्चतम सत्य को प्राप्त कर सकें। यह एक आध्यात्मिक यात्रा है जो आत्मा और शरीर के बीच के गहरे संबंधों को उजागर करती है।

क्यों पढ़ें:

- प्राचीन भारतीय दर्शन में रुचि रखने वालों के लिए एक अनमोल खजाना।
- आत्मज्ञान और कुंडलिनी जागरण की प्रक्रिया को समझने के लिए एक मार्गदर्शक।
- सांख्य, योग और वेदान्त के सिद्धांतों का गहन अध्ययन।

विशेषता: यह पुस्तक गूढ़ नहीं है, बल्कि बिलकुल सरल और व्यावहारिक है। लेखक ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों के आधार पर इसे लिखा है, जिससे पाठकों को इसे समझने और अपने जीवन में लागू करने में आसानी होगी।

इस पुस्तक के माध्यम से, पाठक न केवल भारतीय दर्शन की गहराईयों में उतरेंगे, बल्कि अपने भीतर की ऊर्जा को भी पहचानेंगे और जागृत करेंगे। यह एक अद्वितीय यात्रा है जो आत्मा और शरीर के बीच के संबंधों को नए दृष्टिकोण से समझने का अवसर प्रदान करती है।

इस पुस्तक के सभी अध्याय मूल रूप से हमारे पिछले काम का हिस्सा थे; जो है 'कुंडलिनी विज्ञान' श्रृंखला की 'आध्यात्मिक मनोविज्ञान' पुस्तकें। अगर आपको ये पसंद आए, तो आपको पूरे संकलन में और भी मिलेंगे।

कुंडलिनी जागरण सांख्य दर्शन का आधारभूत सिद्धांत प्रस्तुत करता है

दोस्तों पुरुष से ही आभासी प्रकृति को अनुभवात्मक अस्तित्व मिला। अनुभवात्मक मस्तिष्क बनने से पहले प्रकृति छाया की तरह आभासी होते हुए भी सृष्टि को चला रही थी। मतलब उसका अपना कोई अस्तित्व नहीं था, पेड़ की

छाया की तरह। जब पहला अनुभवात्मक मस्तिष्क बना तो उसके नाड़ी स्पंदनों से पुरुष के अंदर तरंगें पैदा हुई। वह पुरुष को महसूस हुई जिससे पुरुष के अपने अनंत प्रकाशरूप आत्मस्वरूप में अंधेरा छा गया। मतलब पुरुष प्रकृति बन गया। हालांकि जो मस्तिष्क में विचाररूपी नाड़ी स्पंदन उभरते रहे, वे उसे पुरुष की तरह प्रकाशमान और चेतन महसूस होते रहे। मतलब प्रकृतिपुरुष युग्म की उत्पत्ति हुई। यह ऐसे ही है जैसे एक पेड़ तूफान से टूट कर अपनी छांव के ऊपर गिर गया और छांव की तरह अस्तित्वहीन हो गया। पहले, तूफान से पेड़ के हिलने से उसकी छाया पर उसके रेखाचित्र बन और मिट रहे थे। पर उस पेड़ के ठूंठ से नई कोंपल निकलने से पुनः नया पेड़ बन गया। अब उस नए पेड़ के छायाचित्र उस पुराने गिरे हुए पेड़ पर बनने लगे। मतलब पेड़ की छाया भी अस्तित्व में आ गई थी और उस पर पड़ने वाले पेड़ के रेखाचित्र भी उसे असली पेड़ की तरह महसूस होने लगे। पुरुष के साथ भी ऐसा ही हुआ। बेशक प्रकाशरूप पुरुष अपनी तरंगों को महसूस करके अंधकार रूप प्रकृति बन गया। पर एक मूल पुरुष भी था जो कभी भी अपने सिवाय मतलब अपनी शुद्ध आत्मा के सिवाय कुछ भी महसूस नहीं करता, अपने अंदर बनने वाली अपनी तरंगों को भी नहीं। इसलिए वह कभी भी आत्मच्युत होकर प्रकृति नहीं बन सकता। उसे शास्त्रोक्त पुरुषोत्तम कह सकते हैं। पुरुष आसमान की तरह ही है। एक आसमान से चाहे जितने मर्जी आसमान बना लो।

उपरोक्त तथ्य का प्रमाण कुंडलिनी जागरण से मिलता है। कुंडलिनी जागरण के दौरान आत्मा पूर्ण प्रकाशरूप महसूस होती है, और उसमें समस्त सृष्टि तरंगों के रूप में महसूस होती है। पर जैसे ही आदमी उन सृष्टिरूपी तरंगों के प्रति आसक्त होने लगता है, वैसे ही आत्मा का अनंत प्रकाश ओझल हो जाता है। मतलब पुरुष की छाया अस्तित्व में आ जाती है। दरअसल भौतिक अस्तित्त्व में तो वह पहले भी थी, इससे तो अनुभवात्मक अर्थात आत्मिक सत्ता मिली। मतलब अब छाया अपने को महसूस करने लगी कि वह है। पहले तो वह मिट्टी पत्थर की तरह थी जैसे वे भी अपने को आत्मिक रूप में महसूस नहीं करते कि वे हैं, पर वे भौतिक रूप से होते हैं। आदमी फिर से पहले की तरह अपनी आत्मा को अंधकारमय प्रकृति के रूप में और उसमें उमड़ रहे मानसिक विचारों को प्रकाशमान पुरुषतरंगों के रूप में महसूस करने लगता है। पुरुषतरंगें तभी बन रही हैं न जब बैकग्राउंड में एक पुरुष अर्थात पुरषोत्तम बैठा है। नहीं तो तरंगें कहां से आएंगी? इस तरह से कई बार तो मुझे कुंडलिनी जागरण ही सांख्य दर्शन का आधारभूत सिद्धांत लगता है।

कुंडलिनी योग से डार्क मैटर डार्क एनर्जी के रूप में व्यवहार करने लगता है

दोस्तों, स्थूल जगत और उसका अभाव दोनों का ही अस्तित्व नहीं है। आदमी दोनों को अस्तित्व प्रदान करता है। जगतभाव पुरुष का अविभाजित अंश है। इसलिए जगतअभाव भी पुरुष का अंश ही सिद्ध हुआ। बेशक भाव की अपेक्षा बहुत छोटा। अगर जगत भाव को हम पुरुष का अविभाजित अंश कहते हैं तो अभाव को प्रकृति का अविभाजित अंश कहने में कोई समस्या नहीं है। ज्ञान और साधना से आदमी पूर्ण पुरुष तो बन सकता है पर पूर्ण प्रकृति कैसे बनेगा। पूर्ण पुरुष का अस्तित्व है पर पूर्ण प्रकृति का तो अस्तित्व ही नहीं है। वैसे अस्तित्व तो संपूर्ण जगतभाव का भी नहीं है। मतलब आंशिक जगतभाव का अस्तित्व ही संभव है। यह इसलिए क्योंकि जगतभाव को अस्तित्व जीवों के अनुभव से मिलता है। और ऐसा कोई जीव नहीं है जो संपूर्ण जगतभाव को एक साथ अनुभव कर सके। सृष्टि के सभी जीव मिलकर भी ऐसा नहीं कर सकते। इसी तरह संपूर्ण जगतअभाव अर्थात प्रकृति का भी अस्तित्व संभव नहीं है। मतलब यह है कि बेशक समग्र जगतभाव का और समस्त जगतअभाव का भौतिक अस्तित्व है पर उनमें आत्मा नहीं है, और उन्हें कोई जीवात्मा भी अनुभव नहीं करता।

क्योंकि पुरुष तो कभी नष्ट नहीं होता इसलिए उसका अभाव नहीं होता। मतलब पुरुष की छाया बन ही नहीं सकती। छाया वास्तव में अभाव को ही कहते हैं। पेड़ की छाया वस्तुतः पेड़ की नहीं होती बल्कि प्रकाश किरणों की होती है। जिस क्षेत्र पर प्रकाश किरणों का अभाव हो गया, उस क्षेत्र में पेड़ की छाया पड़ी हुई मानी जाती है। इसी तरह से जगत से जो छाया बनती है, वह पुरुष के अभाव से बनती है। मतलब जगत एक पेड़ की तरह है, और पुरुष सूर्य की तरह है। इसी तरह समग्र सृष्टि की छाया ही मूल प्रकृति है, पुरुष का इससे कुछ लेना देना नहीं। समग्र जगत के अभाव को मूल प्रकृति कहेंगे। क्योंकि समग्र जगत भी पुरुष का ही अविभाजित अंश है, इसलिए व्यवहार में मूल प्रकृति को पुरुष की छाया कहा जाता है। लघु मतलब व्यष्टि या व्यक्तिगत जगत के द्वारा पैदा किए गए छायानुमा अभाव को लघु या व्यष्टि या व्यक्तिगत प्रकृति कहेंगे। मतलब व्यष्टि जगत को ही अनुभवात्मक सत्ता मिलती है, समष्टि जगत को नहीं। हालांकि भौतिक अस्तित्व दोनों का होता है।

प्रकृति सीधी पुरुष तक नहीं जा सकती। उसे पुरुष अंशों से होकर ही क्रमवार ऊपर चढ़ना पड़ता है। इसलिए यह पुरुष के अविभाजित अंश को धीरे-धीरे बढ़ाती रहती है। सबसे छोटे जीव जैसे कि जीवाणु आदि में जरा भी पुरुष अंश नहीं होता। पर यह पुरुष अंश पैदा करने वाली शरीररूपी सीढ़ी का पहला पायदान होता है। फिर मेंढक, मछली आदि जीवो में प्रकृति बनी जीवात्मा को पुरुष अंश महसूस होने लगता है। कुत्ता, बंदर जैसे प्राणियों में यह अंश काफी बढ़ जाता है। आदमी में यह अंश सर्वोच्च स्तर पर होता है। इस स्तर से प्रकृति कुंडलिनी योग से सीधे ही पुरुष तक छलांग लगा सकती है। मतलब मनुष्य शरीर से ज्यादा विकसित शरीर की जरूरत नहीं पड़ती। महामानव आदि तो मिथकीय परिकल्पना ही लगती हैं इस मामले में, जिनका कोई विशेष उद्देश्य नहीं दिखता।

हम स्थूल जगत को कभी सीधे तौर पर अनुभव नहीं कर सकते, न इसके भाव को और न इसके अभाव को। स्थूल जगत का जो सूक्ष्म चित्र हमारी आत्मा पर बनता है, हम उसे ही महसूस कर सकते हैं। स्थूल जगत के भाव का चित्र तो हमें पहाड़, नदी, सूर्य आदि विविध पदार्थों के रूप में महसूस होता है। इन पदार्थों के अभाव का चित्र हमें अंधेरे के रूप में महसूस होता है। वह तो अंधेरे का सूक्ष्म रूप है। पर उसका स्थूल रूप भी बाहर मौजूद होता है, उसी तरह जैसे आत्मा में अनुभव हो रहे सूक्ष्म जगत का स्थूल रूप बाहर के स्थूल जगत के रूप में होता है। उस स्थूल अंधेरे को ही शायद डार्क एनर्जी, डार्क मैटर आदि कहते हैं।

भौतिक शरीर की तरह भौतिक जगत की भी एक जीवन सीमा है। जैसे शरीर उस सीमा को छू लेने पर मर जाता है, उसी तरह जगत भी अपनी आयु पूरी होने पर नष्ट हो जाता है। स्थूल शरीर सूक्ष्म शरीर रूपी व्यष्टि प्रकृति में समा जाता है। स्थूल जगत डार्क एनर्जी एंड डार्क मैटर जैसे नाम वाली समष्टि प्रकृति अर्थात मूल प्रकृति में समा जाता है। उस सूक्ष्म शरीर से नया शरीर फिर से जन्म ले लेता है। उसी तरह मूल प्रकृति से भी नया जगत पैदा हो जाता है। यह सिलसिला चक्रवत चलता रहता है।

कई लोग बोलते हैं कि इस जगत की उत्पत्ति परमात्मा से हुई है। वास्तव में पुरुष से कुछ पैदा नहीं होता। वह बिल्कुल असंग है। वह आश्चर्यमय और अद्वितीय है। हां, उसकी निकटता से जगत को अनुभवात्मक सत्ता मिलती है। जगत तो

पुरुष की तरह ही अनादि, अनंत है। यहां यह अंतर है कि पुरुष हमेशा पूर्ण और एकसमान रहता है, जबकि जगत बदलता रहता है। जगत कभी भाव रूप में होता है तो कभी अभाव रुप में। इसके भाव रूप में अभिव्यक्ति के भी अनगिनत स्तर हैं और अभाव रुप में अभियुक्ति के भी अनगिनत स्तर हैं। इसी जगत को प्रकृति कहते हैं। जब इसे पुरुष की समीपता मिलती है, तब यह अनुभव के दायरे में आता है, अन्यथा बिना अनुभव के ही चलायमान रहता है, जैसे कि कोई नर्तकी अंधेरे में नाच रही हो। इसीलिए कहते हैं कि अनुभव में आने वाला समस्त संसार प्रकृति और पुरुष के सहयोग से बना है।

इसी तरह से लोग कहते हैं कि बच्चे परमात्मा से आते हैं इसलिए परमात्मा का साक्षात रुप है। आदमी के जन्म के साथ ही वह अपने मस्तिष्क में जगत के चित्र महसूस करने लगता है। मस्तिष्क में वे तभी महसूस हो सकते हैं, अगर वे बच्चे के सूक्ष्म शरीर में पहले से मौजूद हों, अन्यथा वे चित्र बनेंगे तो जरूर पर किसी को महसूस ही नहीं होंगे। बोलने का मतलब है कि अंधेरा रूपी सूक्ष्मशरीर पर ही वे प्रकाशमान चित्र बन सकते हैं। अगर बच्चों की आत्मा अंधेरे सूक्ष्म शरीर की बजाय प्रकाशमान पुरुष के रूप में हो तब उस पर प्रकाशमान चित्र कैसे बन सकते हैं। प्रकाशमान दीवार पर प्रकाश से रेखाचित्र तो नहीं बन सकते। पहले दीवार को काला या अंधेरानुमा करना होगा। हां यह जरूर है कि बच्चे परमात्मा के सबसे निकट होते हैं, क्योंकि उनमें अहंकार भाव बहुत कम होता है।

प्रकृति व्यक्त और अव्यक्त होती रहती है। यह शाश्वत चक्र है। इसमें पुरुष का कोई लेना देना नहीं है। वह स्थिर, शाश्वत और चेतन तत्व है। उसकी समीपता से प्रकृति को ऐसे ही शक्ति और गति मिलती रहती है, जैसे चुंबक की समीपता से लोहे को। अव्यक्त प्रकृति को डार्क मैटर कह सकते हैं। डार्क मैटर में सिर्फ गुरुत्व होता है, अन्य कुछ नहीं। मतलब डार्क मैटर का अस्तित्व है भी और नहीं भी है। इसलिए "नहीं है", क्योंकि इसमें अस्तित्ववान वस्तु की कोई विशेषता नहीं है। इसे न देख सकते हैं, न सुन सकते हैं, न छू सकते हैं। यह इंद्रियों की पहुंच में नहीं है। यह "है" इसलिए है, क्योंकि इसमें गुरुत्व बल है। गुरुत्व बल भी सत्ता का या होने का ही सामान्य या छोटा सा लक्षण है। तभी तो कहते हैं कि फलां की बातों में वजन या गुरुत्व है। मतलब फलां की बातों का व्यावहारिक अस्तित्व है। डार्क एनर्जी भी मूल प्रकृति हो सकती है। यह भी डार्क मैटर और मूल प्रकृति की तरह अनिर्वचनीय ही है। यह "नहीं है", क्योंकि इसमें भौतिक वस्तु का कोई भी लक्षण नहीं है। यह "है", क्योंकि यह ऊर्जा के जैसा प्रभाव पैदा करती है। इसलिए हो सकता है कि दोनों एक ही चीज हों। किसी चीज के अस्तित्व के साथ उसका प्रभाव भी जुड़ा होता है। प्रभाव के बिना अस्तित्व अधूरा है। यदि एक कठोर चट्टान चोट न पहुंचा सके, तो उस चट्टान के होने का कोई मतलब नहीं रह जाता। डार्क मेटर उसी कठोर चट्टान की तरह है, और डार्क एनर्जी उसके द्वारा लगाई गई चोट है, जो ब्रह्मांड को बाहर की ओर धकेल रही है। जैसे नदी में पड़ी चट्टान किसी बहते आदमी को रोक भी सकती है, और किसी आदमी को अपने साथ बहा भी सकती है, उसी तरह मूल प्रकृति डार्क मैटर की तरह व्यवहार करके सभी अंतरिक्षीय पिंडों को गुरुत्व बल से आपस में बांध भी सकती है, और डार्क एनर्जी की तरह व्यवहार करके उन्हें एक दूसरे से दूर भी धकेल सकती है। आम आदमी के मन का अंधेरा डार्क मैटर जैसा होता है, जो उसके जगत को अपने में खींच कर और बांध कर रखता है। पर कुंडलिनी योगी के मन का अंधेरा डार्क एनर्जी की तरह व्यवहार करता है, जो उसके जगत को अपने से बाहर धकेलने की कोशिश करता रहता है। वह जगत फिर बाहर निकल कर उसके मन में पुनः उभरता रहता है, और प्रकाशमान आत्मा में विलीन होता रहता है। एक संतुलित व्यक्ति में डार्क एनर्जी और डार्क मैटर एक संतुलित अनुपात में रहते हैं, वैसे ही जैसे बाहर के भौतिक ब्रह्मांड में होते हैं।

इस लिहाज से तो आदमी के मस्तिष्क की सृष्टि भी व्यक्त और अव्यक्त के बीच झूलने वाली होनी चाहिए, अनादि काल से। मतलब आदमी का बंधन अनादि होना चाहिए। इसका विश्लेषण हम अगली पोस्ट में करेंगे।

कुंडलिनी योग एक माली की तरह काम करता है

दोस्तों, पूर्ण प्रकृति संपूर्ण जगत की छाया है। पूर्ण प्रकृति को मूल प्रकृति भी कहते हैं। यह समष्टि जगत की मूल प्रकृति है। व्यष्टि जगत की मूल प्रकृति को मूलाधार कहते हैं। पर मूलाधार तो शुद्ध छाया होती है। उसमें किसी विशेष भौतिक वस्तु की सूचना नहीं छिपी होती। मतलब यह शून्यमय छाया होती है। उधर हम मूल प्रकृति के अंदर संपूर्ण भौतिक जगत की सूचना को दर्ज होया हुआ मान रहे हैं। पर इसमें कोई विरोधाभास नहीं है। मूल प्रकृति में सभी विरोधी सूचनाएं एक दूसरे से रद्द होकर शून्य ही बन जाती हैं। पूरी सृष्टि संतुलित है, मतलब न्यूट्रल है। इसमें जितना पॉजिटिव है, उतना ही नेगेटिव है। इस तरह से मूल प्रकृति और मूलाधार दोनों एक ही है। मतलब आदमी मूलाधार के रूप में मूल प्रकृति को भी महसूस कर सकता है। क्योंकि मूल प्रकृति संपूर्ण सृष्टि का सूक्ष्म रूप है, इसका मतलब है कि आदमी अप्रत्यक्ष रूप में अर्थात मूलाधार के रूप में संपूर्ण सृष्टि को भी एक साथ अनुभव कर सकता है।

यहां एक पेच भी है। कोई कह सकता है कि जब मूल प्रकृति में सभी सूचनाएं खत्म हो गईं, तो उसमें अंधेरा कैसे रहा, क्योंकि अंधेरे का मतलब ही उसमें सूक्ष्म सूचनाओं की उपस्थिति है। दरअसल सूचनाएं खत्म नहीं हुईं, पर उनका कुल प्रभाव एकदूसरे से रद्द हो गया। सूचनाएं तो उसमें सारी रहीं। यह ऐसे ही है जैसे हलवे में चीनी और नीम डालने से होगा। रहेंगी तो ये दोनों चीजें, पर हलवा हमें न मीठा लगेगा, न कड़वा। आदमी के मूलाधार में पहुंचने पर भी ऐसा ही होता है। उसमें सभी सूचनाएं एकसमान होती हैं। इसलिए एकसमान सा, न चुभने वाला और आनंदमयी सा अंधेरा महसूस होता है उसमें। न किसी सूचना से राग, न किसी सूचना से द्वेष। यही अद्वैत है। इसीलिए अद्वैत और अनासक्त जीवन जीने की सलाह दी जाती है। इससे आदमी जल्दी मूलाधार में पहुंच जाता है। पर यह तभी होता है, जब अद्वैत के साथ भरपूर, विविध, और विरोधी दुनियादारी को भी जिया जाए। इससे आदमी सभी किस्म की विपरीत सूचनाएं इकट्ठा करेगा, जो एकदूसरे से रद्द होकर जल्दी ही मूलाधार में प्रवेश करा देती हैं। बिना विरोधी दुनियादारी के अद्वैत का आचरण एक दिखावा ही लगता है मुझे।

फिर कहते हैं कि मूलाधार तो विकास करते हुए कुंडली जागरण के माध्यम से पुरुष में विलीन हो सकता है। फिर मूल प्रकृति पुरुष में विलीन होकर खत्म क्यों नहीं हो जाती। शायद ऐसा इसलिए है क्योंकि मूल प्रकृति का भौतिक अस्तित्व है, जिसे हम डार्क मैटर या डार्क एनर्जी कहते हैं। यह वैज्ञानिक सिद्धांत है कि भौतिक वस्तु कभी खत्म नहीं हो सकती। वह केवल रूप बदल सकती है, पर रहेगी वह हमेशा। इसे हम थ्योरी ऑफ कंजर्वेशन ऑफ मास एंड एनर्जी कहते हैं। एक वस्तु विभिन्न किस्म की वस्तुओं के रूप में या ऊर्जा के रूप में रह सकती है। यह सभी रूप आपस में बदलते रह सकते हैं। पर वह वस्तु कभी खत्म नहीं हो सकती। दूसरी तरफ मूलाधार का कोई भौतिक अस्तित्व नहीं है। यह एक आत्मा का अनुभव है। वह अनुभव भी सच्चा नहीं पर भ्रमपूर्ण है। या ऐसा कह लो कि यह आत्मा पर भ्रम से बना हुआ मूल प्रकृति का आभासी चित्र मात्र है। असली या भौतिक उसमें कुछ भी नहीं है। जब आत्मा को ज्ञान होने पर भ्रम समाप्त हो जाता है, तो मूलाधार का अनुभव पुरुष के अनुभव के असली रूप में आ जाता है। यही सच्चा और असली अनुभव है। अगर मूल प्रकृति भी मात्र एक अनुभव होता और उसका कोई भौतिक अस्तित्व न होता, तब तो वह कब की खत्म हो जाती, और सृष्टि का अस्तित्व ही नहीं बचता। तब न हम होते, न आप और न ही यह रंगीन दुनिया। कई वेदांती लोग कहते हैं कि मूल प्रकृति का अस्तित्व नहीं है। वह भ्रम है, आदि-आदि। वे दरअसल मूलाधार की बात कर रहे हैं, जो मूल प्रकृति का आभासी मानसिक चित्र है। भौतिक रूप में तो सूक्ष्म मूल प्रकृति का अस्तित्व वैसा ही सत्य है, जैसा स्थूल भौतिक जगत का। बाईबल के Genesis 2:7 में मानवता को इसी तरह परिभाषित किया गया है। वहाँ हम पाते हैं कि परमेश्वर ने मानवता को परमेश्वर की छवि में बनाया है। परमेश्वर ने मानवता को एक ऐसे तरीके से बनाया है जो भौतिक दुनिया को बनाने के तरीके से बहुत अलग है।

कुंडलिनी योग से मूलाधार को ही पुरुष में विलीन किया जा सकता है, मूल प्रकृति को नहीं। पहले हर एक चक्र पर जमा संसारी कचरे को बाहर निकाला जाता है। फिर खाली हुए चक्र स्थानों पर कुंडलिनी चित्र को भरा जाता है। तभी यह हर समय ध्यान में रहते हुए उचित अवसर आने पर जाग जाता है। यह ऐसे ही है, जैसे एक माली बंजर भूमि पर फूल तभी उगा सकता है, जब उसके द्वारा पहले वहां के घास, फूस, झाड़, कंकड़ आदि को हटाकर उस जगह को साफ किया जाता है। अच्छी तरह से पाला और संभाला गया फूल का पौधा ऊपर उठता हुआ और बढ़ता हुआ कभी न कभी तो जागृति के फूल के रूप में खिलेगा ही।

भौतिक वस्तु न तो कभी पैदा हो सकती है, और न नष्ट हो सकती है, यह वैज्ञानिक सिद्धांत सांख्य दर्शन के सिद्धान्त को भी बयां करता है। इसके अनुसार प्रकृति भी रूप बदलती रहती है। यह कभी व्यक्त होती है, कभी अव्यक्त। पर रहती यह हमेशा है। मतलब यह अनादि, अनंत है। इसलिए यह सत्य नहीं कि प्रकृति या जगत की उत्पत्ति पुरुष अर्थात परमात्मा से हुई है। पुरुष की तरह प्रकृति का भी अपना स्वतंत्र अस्तित्व है। यह जो पुरुष से प्रकृति के उत्पन्न होने की बात की गई है, वह मन के अंदर बने प्रकृति के चित्र मतलब व्यष्टि प्रकृति के लिए कही गई है। आत्मा मतलब पुरुष खुद उस चित्र का रूप ले लेता है। मतलब उस प्रकृतिचित्र की उत्पत्ति पुरुष से हुई, प्रकृति की नहीं। आत्मा को जब अपने असली पुरुष रूप का ज्ञान हो जाता है, तो मानो वह प्रकृतिचित्र फिर से अपने असली पुरुष रूप में आ गया, मतलब प्रकृति पुरुष में विलीन हो गई।

कुंडलिनी योग सांख्य दर्शन और वेदांत दर्शन के बीच की एक संयोजक कड़ी है

दोस्तों, पुरुष से कुछ भी निर्माण नहीं हो सकता। वही असल में शून्य आकाश है। नजर में आने वाला खाली व भौतिक आकाश भी वास्तव में शून्य आकाश नहीं है। पुरुष से अगर संसार की उत्पत्ति मानी जाएगी तो यह उस मूल वैज्ञानिक सिद्धांत के खिलाफ होगा जिसके अनुसार कोई भी पदार्थ ना तो पैदा हो सकता है, और न ही नष्ट हो सकता है, बल्कि केवल रुप ही बदल सकता है। पुरुष से संसार के पैदा होने का मतलब है, शून्य से पैदा होना, क्योंकि पुरुष ही असली शून्य है। पर वेदांत दर्शन का यह सिद्धांत है कि संसार ब्रह्म अर्थात पुरुष में विलीन हो जाता है। यह वास्तव में संसार के मानसिक चित्र के बारे में है, असली या स्थूल व भौतिक संसार के बारे में नहीं। इसको शास्त्रों में विशेषकर योग वासिष्ठ में ऐसे उदाहरण से समझाया गया है, जैसे आकाश में पुष्प या उद्यान नहीं खिल सकता या खरगोश के सिर पर सींग नहीं उग सकते, आदि आदि। ऐसे ही अनेकों उदाहरणों से समझाया गया है।

सांख्य और वेदांत दर्शन के बीच अज्ञान के कारण विरोधाभास दिखाई देता है। यह इसलिए होता है क्योंकि इनके सिद्धांतों को हम एक दूसरे के ऊपर थोपते हैं। अपने-अपने दर्शनों के अंदर दोनों के सिद्धांत पूर्ण और युक्तियुक्त हैं। अगर हम वेदांत के जगतमिथ्यावाद को सांख्य दर्शन के ऊपर थोपेंगे, तो गड़बड़ तो होगी ही। वेदांत का जगत मस्तिष्क के अंदर महसूस होने वाला और आत्मा के ऊपर बना जगत का सूक्ष्म प्रतिबिंब है। प्रतिबिंब तो हमेशा मिथ्या या झूठा ही होता है। दर्पण में दिखने वाला पहाड़ क्या सत्य होता है? बिल्कुल नहीं। पर सांख्य का जगत बाहर का असली, स्थूल और भौतिक जगत है। इसे हम मिथ्या कैसे मान सकते हैं? क्या सड़क के किनारे पड़ी हुई चट्टान झूठी है? बिल्कुल नहीं। अगर कार चालक उसे प्रतिबिंब की तरह मिथ्या मानेगा, तो अपनी कार उससे टकरा सकता है।

वेदांत कहता है कि ब्रह्म ही सत्य है, जगत मिथ्या है। ब्रह्म मतलब आत्मा ही सत्य है, जगत तो उस पर बना एक प्रतिबिंब है, जो मिथ्या है। यह ऐसे ही है कि दर्पण ही सत्य है, और उसमें दिख रहे जगत के चित्र मिथ्या हैं, मतलब उनका अस्तित्व नहीं है। पर बाहर के स्थूल जगत पर तो यह सिद्धांत लागू नहीं हो सकता। बाहर तो कार्यकारण परंपरा चलती है। मतलब कारण के बिना कार्य का अस्तित्व नहीं हो सकता। बाहर मूल प्रकृति का भौतिक अस्तित्व है, तभी उससे भौतिक संसार बन सकता है। यह ऐसे ही है, जैसे बर्फ से पानी बनता है, और पानी से बादल। पानी या बादल बिना कारण के अचानक कहीं से प्रकट नहीं हो जाते। दर्पण में तो किसी भी वस्तु का चित्र अचानक बन जाता है, बिना किसी कारण के। पर जिस वस्तु से वह चित्र बनता है, वह वस्तु तो अपने जनक अर्थात कारण से बनी है। वह अचानक प्रकट नहीं हुई है। इसी तरह आत्मा के ऊपर संसार की सभी वस्तुओं का चित्र अचानक व बिना कारण के बन जाता है। पर उन असली सांसारिक वस्तुओं को बनने में तो करोड़ों और अरबों वर्ष लगे हैं। अगर हम इस कार्य कारण परंपरा को पीछे खींचते जाएं, तो अंत में मूल प्रकृति बचती है। इसी से संसार का निर्माण शुरू होता है। यह पुरुष में विलीन नहीं हो सकती, क्योंकि पुरुष ही असली शून्य आकाश है। इसमें स्थूल प्रकृति के विलीन होने का मतलब है, मूल प्रकृति का शून्य हो जाना अर्थात नष्ट हो जाना। और सृष्टि के समय इससे मूल प्रकृति के बनने का अर्थ है कि मूल प्रकृति का पैदा होना। पर यह इस वैज्ञानिक सिद्धांत के खिलाफ है कि कोई भी चीज ना तो पैदा हो सकती है और न ही नष्ट हो सकती है। वह केवल रूप बदल सकती है।

जो वेदांती लोग कहते हैं कि मूल प्रकृति आत्मा में विलीन हो जाती है, वह व्यष्टि मतलब व्यक्तिगत मूल प्रकृति के लिए है, समष्टि मतलब सामूहिक मूल प्रकृति के लिए नहीं। वह दरअसल आत्मा पर बना मूल प्रकृति का प्रतिबिंब होता है, असली व भौतिक मूल प्रकृति नहीं। अगर दर्पण के आगे से सब कुछ हटा दो, तो दर्पण के सभी प्रतिबिंब एकदम से मिट जाएंगे। इसी तरह आत्मा को दुनियादारी से हटा दो तो दुनिया के सारे प्रतिबिंब मिट जाएंगे। बेशक मूल प्रकृति के प्रतिबिंब को मिटने में ज्यादा समय लगता है, क्योंकि यह अज्ञान के भ्रम से बना होता है। मूल प्रकृति के प्रतिबिंब के मिटने को ही उसका आत्मा या परमात्मा में विलीन होना कहा गया है। विलीन कुछ नहीं हुआ, क्योंकि जब कुछ बना ही नहीं था, तो विलीन क्या होगा। भ्रम से ही बनता और विलीन होता प्रतीत होता है।

कुंडलिनी योगी सांख्य दर्शन और वेदांत दर्शन के बीच में विवाह करवाता है। पहले योगी सांख्य के अनुसार प्रकृति को असली और अलग समझता हुआ उसकी खूब उपासना करता है, और उसमें खूब मशगूल रहता है। फिर जब उसे कोई वस्तु, प्रेमी, गुरु, देवता आदि मन को बहुत भाने लगता है, तो वह उसके प्रति आसक्त हो जाता है, और दुनियादारी में पूर्णतया सक्रिय रहते हुए भी हर समय उसके बारे में सोचता रहता है। इससे उसके प्रति उसका ध्यान पक्का हो जाता

है। फिर वह खुद ही योग की उच्चतर सीढ़ी में पहुंचकर कुंडलिनी योग करने लगता है। इससे वह वस्तु उसका ध्यान चित्र बन कर उसे बहुत आनंद और शांति प्रदान करती है। फिर इससे प्रेरित होकर वह खुद ही एक सीढ़ी और ऊपर चढ़कर तंत्र की अतिरिक्त सहायता लेने लगता है। इससे ध्यान चित्र कुंडलिनी चित्र बन जाता है। शीघ्र ही उसकी कुंडलिनी जाग जाती है। मतलब वह उस चित्र की याद में इतना ज्यादा खो जाता है कि वह उसकी आत्मा के साथ एकाकार हो जाता है। जो प्रकृति पहले सांख्य के अनुसार पुरुष से अलग होती थी, वह अब वेदांत के अनुसार पुरुष में विलीन हो जाती है। मतलब सांख्य दर्शन वेदांत दर्शन में रूपांतरित हो जाता है।

बेशक हरेक वैदिक दर्शन एक अलग किस्म के धर्म या जीवनशैली को रेखांकित सा करता है, पर मुझे ये सभी आपस में जुड़े हुए लगते हैं। इन दर्शनों का विकासक्रम एक आदमी के जीवन के विकासक्रम से हूबहू मेल खाता है। बचपन में आदमी जब गणना आदि को और ज्ञान प्राप्ति के लिए तर्कशीलता आदि को सीखता और अपनाता है, उस समय उसे न्याय दर्शन और वैशेषिक दर्शन जैसे निरे भौतिक और तार्किक दर्शनों में स्थित मानना चाहिए। जब वह प्रेम करने वाली किशोरावस्था व प्रारंभिक गृहस्थावस्था में पहुंचता है तब उसे सांख्य दर्शन में स्थित मानना चाहिए। बाद की गृहस्थावस्था में उसे योग दर्शन में स्थित मानना चाहिएं, कयोंकि तब वह योग भी करता है। योग के साथ वह सनातन धार्मिक कृत्य जैसे कि कर्मकांड भी करने लगता है, कयोंकि दोनों का आपस में अटूट रिश्ता है। इसे पूर्व मीमांसा दर्शन वाला स्तर मानना चाहिए। फिर जब उसे जागृति मिल जाती है, उसके बाद उसकी वेदांत दर्शन अर्थात उत्तर मीमांसा दर्शन में पदोन्नति हो जाती है। इस तरह से उसके जीवनकाल में छः के छः वैदिक दर्शन आ जाते हैं। यह सभी दर्शनों और सभी धर्मों के बीच परस्पर सहयोग की अत्यावश्यकता को रेखांकित करता है।

कई लोग इन दर्शनों को विभिन्न कालखंडों में धीरे धीरे उपरोक्त क्रम से ही विकसित होया हुआ मानते हैं। यह दृष्टिकोण भी सही है, कयोंकि संपूर्ण मानव जाति का विकास भी क्रमवार लगभग वैसा ही हुआ है, जैसा एक अकेले मनुष्य का उसके जीवनकाल में होता है। सबसे पहले आदिम मनुष्यकाल में न्याय और वैशेषिक जैसे भौतिक दर्शन आए। फिर जब मानव सभ्यता कुछ विकसित हुई, तो सांख्य और योग दर्शनों का उद्भव हुआ। मानव सभ्यता के बौद्धिक विकास के चरम पर वे पूर्व मीमांसा और वेदांत दर्शनों में समाहित हो गए। व्यष्टि हो या समष्टि, हरेक चीज अज्ञान से ज्ञान की ओर क्रमवार विकास करते देखी जाती है।

सांख्य दर्शन कहता है कि प्रकृति पहले अपने अंदर भटकाती है, फिर मुक्त भी कर देती है। दरअसल यह एक ऐसी सुंदर युवती की तरह है, जो पहले अपने रूप, लावण्य और हाव-भाव से आदमी को मोहित करके खूब नचाती है, और बाद में उसे छोड़ देती है या उससे विवाह कर लेती है। जब आदमी प्रकृति को और उससे पैदा हुई दुनियादारी को व्यवहारिक रूप से अच्छे से व पूरी तरह से समझ लेता है, तभी आगे के दर्शनों की सहायता से उस से पार पा सकता है, अन्यथा नहीं। हमने भी इस पोस्ट में अपने व्यक्तिगत अनुभव से यही कहा है। यह किताबी शब्दों का जाल होता है। व्यवहार में सब कुछ बड़ा स्पष्ट और सुंदर दिखता है। सांख्य दर्शन बेशक भौतिकवादी लगता हो, पर इसका लक्ष्य आध्यात्मिक ही होता है। इसलिए यह आम और मूढ़ भौतिकता के बिल्कुल विपरीत ही है। हालांकि दोनों समान ही हैं, सिर्फ़ धारणा का अंतर होता है। शुद्ध भौतिक लोग इसे केवल भोग के लिए अपनाते हैं, जबकि सांख्य आधारित भौतिकवादी लोग इसे मुख्यतः मोक्ष के लिए अपनाते हैं, भोग तो गौण या उपोत्पाद मात्र होता है।

कुंडलिनी ही दृश्यात्मक सृष्टि, सहस्रार में एनर्जी कैंटीन्यूवम ही ईश्वर, और मूलाधार में सुषुप्त कुंडलिनी ही डार्क एनर्जी के रूप में हैं

विश्व की उत्पत्ति प्राण-मनस अर्थात टाइम-स्पेस के मिश्रण से होती है

फिर हठ प्रदीपिका के पूर्वोक्त व्याख्याकार कहते हैं कि सृष्टि की उत्पत्ति मनस शक्ति और प्राण शक्ति के मिश्रण से हुई। यह मुझे कुछ दार्शनिक जुगाली भी लगती है। भौतिक रूप में भी शायद यही हो, पर आध्यात्मिक रूप में तो ऐसा ही होता है। जब मस्तिष्क में प्राण शक्ति पहुंचती है, तब उसमें मनस शक्ति खुद ही मिश्रित हो जाती है, जिससे हमें जगत का अनुभव होता है। "यतपिण्डे तत्ब्रह्मांडे" के अनुसार बाहर भी तो यही हो रहा है। शून्य अंतरिक्ष के अंधेरे में सोई हुई शक्ति में किसी अज्ञात कारण से हलचल होती है। उसमें खुद ही मनस शक्ति मिश्रित हो जाती है, क्योंकि चेतनामयी ईश्वरीय मनस शक्ति हर जगह विद्यमान है। इससे मूलभूत कणों का निर्माण होता है। सम्भवतः ये मूल कण ही प्रजापति हैं, जो आगे से आगे बढ़ते हुए पूरी सृष्टि का निर्माण कर देते हैं। यह ऐसे ही है, जैसे मूलाधार के अंधेरे में सोई प्राण ऊर्जा के जागने से होता है। तभी कहते हैं कि यह सृष्टि मैथुनी है। फिर मनस शक्ति को देश या स्पेस और प्राण शक्ति को काल या टाइम बताते हैं। फिर कहते हैं कि टाइम और स्पेस के आपस में मिलने से मूल कणों की उत्पत्ति हो रही है, जैसा वैज्ञानिक भी कुछ हद तक मानते हैं।

डार्क एनर्जी ही सुषुप्त ऊर्जा है

दोस्तो, खाली स्पेस भी खाली नहीं होता, पर रहस्यमयी डार्क एनर्जी से भरा होता है। पर इसे किसी भी यन्त्र से नहीं पकड़ा जा सकता। यही सबसे बड़ी एनर्जी है। हम केवल इसे अपने अंदर महसूस ही कर सकते हैं। ब्रह्मांड इसमें बुलबुलों की तरह बनते और मिटते रहते हैं। सम्भवतः यही तो ईश्वर है। यह शून्य हमें इसलिए लगता है, क्योंकि हमें अनुभव नहीं होता। इसी तरह मूलाधार में सोई हुई ऊर्जा भी डार्क एनर्जी ही है। हम इसे अपनी शून्य आत्मा के रूप में महसूस करते हैं। हम हर समय अनन्त ऊर्जा से भरे हुए हैं, पर भ्रम से उसका प्रकाश महसूस नहीं कर पाते। उसे मूलाधार में इसलिए मानते हैं, क्योंकि मूलाधार मस्तिष्क से सबसे ज्यादा दूर है। मस्तिष्क के सहस्रार क्षेत्र में अगर चेतनता का महान प्रकाश रहता है, तो मूलाधार में अचेतनता का घुप्प अंधेरा ही माना जाएगा। मस्तिष्क से नीचे जाते समय चेतना का स्तर गिरता जाता है, जो मूलाधार पर न्यूनतम हो जाता है। यदि ऐसे समय कुंडलिनी का ध्यान करने की कोशिश की जाए, जब मस्तिष्क थका हो या तमोगुण रूपी अंधेरे से भरा हो, तो कुंडलिनी चित्र नीचे के चक्रों में बनता है। मुझे जो दस सेकंड का क्षणिक आत्मज्ञान का अनुभव हुआ था, उसमें रहस्यात्मक कुछ भी नहीं है। यह शुद्ध वैज्ञानिक ही है। संस्कृत की भाषा शैली ही ऐसी है कि उसमें सबकुछ आध्यात्मिक ही लगता है। उसे विज्ञान की भाषा मेंआप "एक्सपेरिएंस ऑफ डार्क एनेर्जी" या "अदृश्य ऊर्जा दर्शन" कह सकते हैं। इसी तरह सुषुम्ना में ऊपर चढ़ने वाली ऊर्जा भी डार्क एनेर्जी की तरह ही होती है। इसीलिए उसे केवल बहुत कम लोग ही और बहुत कम मौकों पर ही अनुभव कर पाते हैं, सब नहीं। हालाँकि यह पूरी तरह से डार्क एनेर्जी तो नहीं है, क्योंकि यह सूक्ष्म तरंगों या सूक्ष्म अणुओं की क्रियाशीलता से बनी होती है। असली डार्क एनेर्जी में तो शून्य के इलावा कुछ नहीं होता, फिर भी उसमें अनगिनत ब्रह्मांडों का प्रकाश समाया होता है। एक पुरानी पोस्ट में मैंने लिखा था कि एकबार कैसे मैंने अपनी दादी अम्मा की परलोकगत आत्मा या डार्क एनेर्जी को ड्रीम विजिटेशन में महसूस किया था। ऐसा लग रहा था कि जैसे कोई चमकीले कज्जल से भरा आसमान हो, जिसका प्रकाश किसीने बलपूर्वक ढका हो, और वह प्रकाश सभी पर्दे-दीवारें तोड़कर बाहर उमड़ना चाह रहा हो, यानि कि अभिव्यक्त होना चाह रहा हो।

यिन-यांग या प्रकृति-पुरुष से सृष्टि की उत्पत्ति

डार्क एनेर्जी में ही सृष्टि के प्रारंभ में सबसे छोटा और सबसे कम देर टिकने वाला कण बना होगा। इसे ही काल या टाइम या विपरीत ध्रुव की उत्पत्ति कह सकते हैं। स्पेस या डार्क एनर्जी दूसरा ध्रुव है, जो पहले से था। टाइम के रूप में निर्मित वह सूक्ष्मतम कण एक महान विस्फोट के साथ स्पेस की तरफ तेजी से आगे बढ़ने लगता है। यही सृष्टि का प्रारंभ करने वाला बिग बैंग या महा विस्फोट है। वह कण तो एक सेकंड के करोड़वें भाग में विस्फोट से नष्ट हो गया, पर उस विस्फोट से पैदा होकर आगे बढ़ने वाली लहर में विभिन्न प्रकार के कण और उनसे विभिन्न पदार्थ बनते गए। आगे चलकर उन कणों की व उनसे बनने वाले पदार्थों की जीवन अवधि में इजाफा होता गया। वैसे भी कहते हैं कि दो

विपरीत ध्रुवों के बनने से ही सृष्टि की उत्पत्ति हुई। इन्हें यिन-यांग कह सकते हैं। यही प्रकृति-पुरुष है। शरीर में भी ऐसा ही है। मूलाधार में डार्क एनेर्जी है, जो कुंडलिनी योग से जागृत हुई। जागृत होने का मतलब है कि कुंडलिनी योग के सिद्धासन में वह मूलाधार चक्र पर पैर की एड़ी के दबाव से बनी संवेदना के रूप में अनुभव की गई। इस संवेदना में ध्यान चित्र मिश्रित होने से यह कुंडलिनी बन गई। इस संवेदना की उत्पत्ति को हम समष्टि के सबसे छोटे मूल कण की उत्पत्ति का शारीरिक रूप भी कह सकते हैं। वह कुंडलिनी एनेर्जी जागृत होने के लिए सहस्रार की तरफ जाने का प्रयास करते हुए मस्तिष्क में रंगबिरंगी सृष्टि की रचना बढ़ाने लगी। मतलब कि दो विपरीत ध्रुव आपस में मिलने का प्रयास करने लगे। शक्ति शिव से जुड़ने के लिए बेताब होने लगी। समष्टि में वह मूल कण बिग बैंग के रूप में आगे बढ़ने लगा और उस डार्क एनेर्जी के छोर को छूने का प्रयास करने लगा, जहाँ से वह आया था। वह मूलकण नौटंकी करते हुए यह समझने लगा कि वह अधूरा है, और उसने डार्क एनेर्जी को प्राप्त करने के लिए आगे ही आगे बढ़ते जाना है। ऐसा करते हुए उससे सृष्टि की रचना खुद ही आगे बढ़ने लगी। यह ऐसे ही होता है जैसे आदमी का मन या कुंडलिनी उस अदृश्य अंतरिक्षीय ऊर्जा को प्राप्त करने की दौड़ में भरे-पूरे जगत का निर्माण कर लेता है। कुंडलिनी भी तो समग्र मन का सम्पूर्ण प्रतिनिधि ही है। मन कहो या कुंडलिनी कहो, बात एक ही है। बिग बैंग की तरंगों के साथ जो सृष्टि की लहर आगे बढ़ रही है, उसे हम सुषुम्ना नाड़ी में एनर्जी का प्रवाह भी कह सकते हैं। पर उस डार्क एनेर्जी का अंत तो उसे मिलेगा नहीं। इसका मतलब है कि यह सृष्टि अनन्त काल तक फैलती ही रहेगी। पर इसे अब हम शरीर से समझते हैं, क्योंकि लगता है कि विज्ञान इसका जवाब नहीं ढूंढ पाएगा। जब आदमी इस दुनिया में अपनी सभी जिम्मेदारियों को निभाकर अपनी कुंडलिनी को जागृत कर लेता है, तब वह दुनिया से थोड़ा उपरत सा हो जाता है। कुछ समय शांत रहकर वह दुनिया से बिल्कुल लगाव नहीं रखता। वह जैसा है, उसी में खुश रहकर अपनी दुनियादारी को आगे नहीं बढ़ाता। फिर बुढ़ापे आदि से उसका शरीर भी मृत्यु को प्राप्त होकर नष्ट हो जाता है। इसी तरह जब इस सृष्टि का लक्ष्य पूरा हो जाएगा, तब उसके आगे फैलने की रफ़्तार मन्द पड़ जाएगी। फिर रुक जाएगी। अंत में सृष्टि की सभी चीजें एकसाथ अपनी-अपनी जगह पर विघटित हो जाएंगी। इसका मतलब है कि बिग बैंग रिवर्स होकर पुनः बिंदु में नहीं समाएगा। सृष्टि का लक्ष्य समय के रूप में निर्धारित होता होगा। निश्चित समय के बाद वह नष्ट हो जाती होगी, जिसे महाप्रलय कहते हैं। क्योंकि सृष्टि के पदार्थों ने आदमी की तरह असली जागृति तो प्राप्त नहीं करनी है, क्योंकि वे तो पहले से ही जागृत हैं। वे तो केवल सुषुप्ति का नाटक सा ही करते हैं। यह भी हो सकता है कि सृष्टि की आयु का निर्धारण समय से न होकर ग्रह-नक्षत्रों की संख्या और गुणवत्ता से होता हो। जब निश्चित संख्या में ग्रह आदि निर्मित हो जाएंगे, और उनमें अधिकांश मनुष्य आदि जीव अपनी इच्छाएं पूरी कर लेंगे, तभी सृष्टि की आयु पूरी होगी। ऐसा भी हो सकता है कि सृष्टि विघटित होने के लिए वापिस आए, बिग बैंग के शुरुआती बिंदु पर। क्योंकि आदमी का शरीर भी मरने से पहले बहुत कमजोर और दुबला-पतला हो लेता है। विज्ञान के गुरुत्वाकर्षण के सिद्धांत से भी ऐसा ही लगता है। जब बिग बैंग के धमाके की ऊर्जा खत्म हो जाएगी, तो गुरुत्वाकर्षण का बल हावी हो जाएगा, जिससे सृष्टि सिकुड़ने लगेगी औऱ सबसे छोटे मूल बिंदु में समाकर फिर से डार्क एनेर्जी में विलीन हो जाएगी। यह संभावना कुंडलिनी योग की दृष्टि से भी सबसे अधिक लगती है। मानसिक सृष्टि का प्रतिनिधित्व करने वाली कुंडलिनी ऊर्जा भी सहस्रार से वापिस मुड़ती है, और फ्रंट चैनल से नीचे उतरती हुई फिर से मूलाधार में पहुंच जाती है। वहाँ से फिर बैक चैनल से ऊपर चढ़ती है। इस तरह से हमारे शरीर में सृष्टि और प्रलय का क्रम लगातार चलता रहता है।

सांख्य दर्शन और वेदांत दर्शन में सृष्टि-प्रलय

सांख्य दर्शन में पुरुष और प्रकृति, दोनों को शाश्वत कहा गया है। पर वेदांत दर्शन में प्रकृति की उत्पत्ति पुरुष से बताई गई है, जैसा मैं भी कह रहा हूँ। यहां पुरुष मूल रूप में प्रकाशमान डार्क एनेर्जी है, और प्रकृति प्रकाश से रहित डार्क एनेर्जी है। मुझे लगता है कि सांख्य में शरीर के अंदर की सृष्टि और प्रलय का वर्णन हो रहा है। हमें अपने मन में ही डार्क एनेर्जी का अंधेरा हमेशा महसूस होता है, यहाँ तक कि कुंडलिनी जागरण के बाद भी। इसीलिए इसे भी शाश्वत कहा गया है। दूसरी ओर वेदांत में बाहर के संसार की सृष्टि और प्रलय की बात हो रही है। वहां तो प्रकृति या डार्क एनेर्जी और उससे पैदा होने वाले कणों का अस्तित्व ही नहीं है। ये तो केवल हमें अपने मन में महसूस होते हैं। वहाँ अगर इनकी उत्पत्ति होती है, तो सिर्फ नाटकीय या आभासिक ही। वहाँ तो सिर्फ प्रकाश से भरा हुआ एनेर्जी कँटीन्यूवम ही है। वैसे तो वेदांत भी मानसिक सृष्टि का ही वर्णन करता है, क्योंकि वे भी किसी भौतिक प्रयोगशाला

का उपयोग नहीं करते, जो बाहर के जगत की उत्पत्ति को सिद्ध कर सके। पर वह उन महान योगियों के अनुभव को प्रमाण मानता है, जो हमेशा एनेर्जी कँटीन्यूवम से जुड़े रहते हैं।

कुंडलिनी जागरण से ही बीज भरा पूरा वृक्ष बनता है

दोस्तो, सृष्टि के रहस्य को सिर्फ सांख्य दर्शन ने ही सबसे अच्छी तरह से समझाया है। प्रकृतिपुरुष युग्म के बारे में शायद शास्त्रों का यह मतलब है कि अगर शुरु में प्रकृति ने भी सृष्टि बनाई तो भी प्रकृतिपुरुष युग्म ने ही बनाई, क्योंकि पुरुष से मिलन की संभावना से प्रेरित होकर ही प्रकृति ने सृष्टि बनाई। जो पुराने समय में समय की कमी के कारण बुद्ध ने जिज्ञासु शिष्य को नहीं समझाया था कि जीवनमरण रूपी रोग की शुरुआत कहां से हुई उसे सांख्य दर्शन से समझा जा सकता है। आदमी हमेशा से भी इस बंधन रोग से ग्रस्त है और नहीं भी है। जब पहला अनुभवात्मक मस्तिष्क बना तभी बंधन की शुरुआत हुई। मतलब तभी जीवात्मा अस्तित्व में आई। पर जिस प्रकृति के ऊपर पुरुष से प्रकाशमय रेखाचित्र बना, वह प्रकृति तो अनादि है। इसका मतलब है कि जीवात्मा अनादिकाल से प्रकृति के रूप में थी।

मतलब जीवात्मा अनादिकाल से बंधन में था पर ऐसा भी नहीं है, क्योंकि प्रकृति छाया की तरह है जिसका अस्तित्व ही नहीं है। जो चीज अनादि है उसका अंत हो ही नहीं सकता। शास्त्रों में कई जगह लिखी यह बात मुझे समझ नहीं आती जिसमें कहा गया है कि बंधन अनादि है, पर उसका अंत हो सकता है। ऐसा होना असंभव है। अंत उसीका हो सकता है जिसकी कभी शुरुआत हुई हो। शायद वे ठीक कह रहे हैं पर हम गलत समझते हैं। ऐसा कहने का उनका एक प्रयोजन बंधन से डराना और उसे कमजोर न समझने की भूल न करना है। दूसरा प्रयोजन यह बताना है कि पुरुष कभी बंधन में नहीं पड़ सकता। अगर ऐसा होता तो लोग बंधन को मिटाने के लिए ज्यादा प्रयास न करते क्योंकि उन्हें फिर बंधन में पड़ने का डर बना रहता। शायद उनका बंधन अनादि कहने का तात्पर्य यह है कि प्रकृति अनादि है, यह नहीं कि जीवात्मा अनादि है। शायद उनका कहने का यह मतलब है कि यह बंधन परंपरा अनादि है और एक आदमी के मुक्त होने से खत्म नहीं हो जाती। साथ में परमात्मा इतना निर्दयी नहीं हो सकता कि उसने सभी जीवों को अनादिकाल से बंधन में जकड़ कर रखा हो। अंतिम प्रयोजन यह लगता है कि लोग गूढ़ दर्शन के झमेले से बचकर सिर्फ साधना पर ध्यान दे। वैसे कई जगह शास्त्रों में ऐसा भी कहा गया है कि फलां आदमी एक ही मनुष्य जन्म में मुक्त हो गया या हो जाता है, फलां को दस जन्म लेने पड़े, फलां को सौ आदि। इस्का यह मतलब हुआ कि बंधन की कभी शुरुआत हुई और वह अनादि नहीं है।

दरअसल प्रकृति का अस्तित्व है भी और नहीं भी। इसीलिए इसे शास्त्रों में अनिर्वचनीय कहा है। पेड़ की छाया भी अनिर्वचनीय ही होती है। वह होती है इसीलिए दिखती है, पर असल में होती भी नहीं।मतलब जीव या आदमी का बंधन अनादि भी है और अनादि नहीं भी है। सैद्धांतिक रूप से तो यह अनादि है पर अनुभवात्मक रूप से इसकी शुरुआत हुई थी। जब जीवात्मा बन ही गया तब इसका विलय पुरुष में ही संभव है, नहीं तो वह अस्तित्वहीन होकर भी सुख-दुख अनुभव करता हुआ भटकता ही रहेगा। यह आश्चर्य ही है कि जीवात्मा का अस्तित्व न होते हुए भी वह कैसे बन जाता है? यह प्रकृतिपुरुष का ही खेल है। जीवात्मा एक भ्रममात्र ही है। मतलब जीवात्मा की उत्पत्ति नहीं होती बल्कि भ्रम की उत्पत्ति होती है। भ्रम खत्म तो बंधन खत्म।

प्रकृति भूमि है तो पुरुष पेड़ है। जब पेड़ का बीज जमीन पर गिरता है तो वह बढ़ने लगता है और बढ़ते बढ़ते पेड़ ही बन जाता है। जैसे जैसे पेड़ बढ़ता है वैसे वैसे भूमि दिखनी कम होती रहती है, और पेड़ दिखना बढ़ता रहता है। अंत में पेड़ इतना फैल जाता है कि उसके पत्तों के झुरमुटों के शिखर से भूमि बिल्कुल नहीं दिखती। ऐसा लगता है कि भूमि और बीज दोनों वृक्ष बन गए हैं। पर दरअसल बीज ही वृक्ष बना होता है। भूमि तो पहले के जैसी ही होती है। एक बीज के पेड़ बनने से भूमि नष्ट नहीं हो जाती, पर दूसरे बीजों को भी पेड़ बनाने के लिए वैसी ही बनी रहती है। इसी तरह प्रकृति भी है जो न होते हुए भी आभासी भूमि की तरह है।

भूमि सबसे नीचे थी। वह आकाश की ऊंचाइयों को छूना चाहती थी। आकाश न सही, पेड़ की ऊंचाई तक ही सही। पर सीधे तौर पर वह ऐसा नहीं कर सकती थी। इसलिए उसने पेड़ की मदद ली। पेड़ के बीज को उसने बढ़ाया और फैलाया और उसे ऊंचा उठा दिया। भूमि बेशक खुद ऊंची नहीं उठ सकी पर उसे पेड़ों को ऊंचा उठाने का श्रेय मिला, जो उसे तसल्ली देने के लिए काफी था। इसी तरह पुरुष की छाया मतलब प्रकृति भी पुरुष जैसा महान बनना चाहती थी। वह सीधे तौर पर ऐसा नहीं कर सकती थी क्योंकि पेड़ की छाया कभी पेड़ नहीं बन सकती और न पेड़ से मिल ही सकती है। इसलिए उसने पुरुष के बीज की मदद ली। उसने पुरुषबीज मतलब जीवात्मा को बढ़ाना शुरु किया और उसे

कुंडलिनी जागरण करा के पुरुष जितना ऊंचा उठा दिया। प्रकृति बेशक खुद पुरुष नहीं बन सकी, पर उसे जीवात्माओं को ऊंचा उठाने का श्रेय मिला, जो उसे तसल्ली देने के लिए काफी था। मां भी लगभग ऐसी ही होती है, इसीलिए प्रकृति और धरती को मां भी कहा गया है।

कुंडलिनी शक्ति से मूल प्रकृति में स्थित ध्यान चित्र जागृत होकर पुरुष बन जाता है

दोस्तों, यह बहुत छोटी पर बहुत सारगर्भित पोस्ट है। मूलाधार क्या मूल प्रकृति को ही कहा गया है। यह विचार मेरे मन में आया था। क्यों न इसका विश्लेषण कर लिया जाए। आदमी का आधार है व्यष्टि प्रकृति अर्थात जीवात्मा। यह सभी जीवों के लिए अलग-अलग है। आधार पर इमारत की गुणवत्ता, आकार, ऊंचाई आदि सभी निर्भर करते हैं। मतलब आधार में भावी इमारत की सारी सूचनाएं दर्ज रहती हैं। इसी तरह से आदमी की जीवात्मा में आदमी की सारी भावी सूचना दर्ज होती है, जैसे कि उसके जन्म, गुण, कर्म, फल आदि।

आधार तो हर एक जीव के लिए अलग और विशेष है, पर मूलाधार तो सबका एक ही है। आधार को प्रकृति का और मूल आधार को मूल प्रकृति का पर्यायवाची शब्द समझना चाहिए। कहते भी हैं कि अमुक आदमी की प्रकृति कैसी है। अर्थात स्वभाव कैसा है? मूलाधार से ही सभी आधार बनते हैं। आधार पहले मूलाधार में बदलना चाहिए। तभी कुंडलिनी योग की असली शुरुआत होगी। कर्म योग से आदमी की आत्मा में दबी हुई सूचनाएं अनासक्ति से उभर कर नष्ट हो जाएंगी। जब आत्मा का बक्सा लगभग खाली हो जाएगा तब वह मूलाधार बनेगा। मतलब उसमें सांसारिक सूचनाएं नहीं दबी होंगी। यह पुरुष की तरह ही होता है। सिर्फ यही अंतर है कि यह पुरुष के विपरीत अंधेरनुमा होगा। मतलब यह पुरुष की आभासी परछाई की तरह ही होगा। जब आदमी के अर्थात आदमी की जीवात्मा के मूल आधार अवस्था में स्थित होने पर गुरु आदि रूप के मानसिक चित्र का ध्यान किया जाता है, तब ध्यान आसानी से लगता है। यह इसलिए क्योंकि आत्मा में कोई दूसरा दबा हुआ कचरा होता ही नहीं जो ध्यान की शक्ति को सोखकर शक्तिशाली हो सके या अभिव्यक्त हो सके। जब तांत्रिक कुंडलिनी योग से उस ध्यान चित्र को कुंडलिनी शक्ति भी दी जाती है, तब तो है आग के शोले की तरह भड़कने लगता है। इससे वह जल्दी ही जागृत हो जाता है।

कुंडलिनी जागरण से पुरुष की प्रकृति तक की यात्रा पूरी होती है

दोस्तों यह पोस्ट थोड़ी लंबी लग सकती है, पर इसमें सृष्टि का बहुत बड़ा रहस्य छिपा हुआ है। बात हो रही थी कि जिस तरह पुरुष मतलब प्रकाश हर जगह और हर समय मौजूद है, उसी तरह मूल प्रकृति मतलब अंधेरा भी है। अगर मूल प्रकृति ना होती तो सृष्टि ही ना होती। पुरुष तो बिल्कुल निश्चेष्ट है क्योंकि वह अपनी अभौतिक आत्मा में पूर्ण है जिससे उसे किसी भी चीज की जरूरत ही नहीं है। जीवाणु को या चींटी को भी प्रकृति ही चलाती है, और बड़े-बड़े ग्रहों और नक्षत्रों को भी वही प्रकृति चलाती है। पुरुष तो एक लक्ष्य है, प्रकृति जिसे पाने की कोशिश करती है। उसी कोशिश में उससे सृष्टि के सारे काम संपन्न होते हैं। हालांकि हाथी, बंदर, मनुष्य जैसे विकसित प्राणी के शरीर को भी प्रकृति ही चलाती है। पर यहां एक विशेषता है। इनको चलाने में जीवात्मा नाम की एक दूसरी प्रकृति भी मदद करती है। जीवात्मा इन प्राणियों के जीवन के अनुभवों से संबंधित सभी सूचनाओं को भंडारित करके रखने का काम करती है। इससे इन्हें चलाना और ज्यादा निपुणता युक्त और आसान हो जाता है। यूं कहो कि मूल प्रकृति ही विकसित होकर कालांतर में जीवात्मा बन जाती है।

मूल प्रकृति मूल पुरुष की छाया है। इसलिए इसमें शुद्ध अंधेरे के सिवाय कुछ नहीं है। इसमें पुरुष की तरह ही संसार का कोई नामोनिशान नहीं है। पर मूल प्रकृति जीवात्मा तब बनती है, जब एक अनुभव करने वाले मस्तिष्क को धारण करने वाला जीव बनता है। वह जिन सांसारिक विषयों को अनुभव करता है, वह भी उससे जुड़ी मूल प्रकृति में सूक्ष्म कोड के रूप में जमा होने लगते हैं। इससे उसे पुरुष तक जल्दी पहुंचने में बहुत मदद मिलती है। हालांकि पहले वाली शुद्ध मूल प्रकृति भी अपनी जगह पर वैसी ही बनी रहती है, क्योंकि वह पुरुष की तरह अजर, अमर है।

जैसे आदमी सहित हर एक जीव के जीवन की परछाई उसकी जीवात्मा के रूप में बनी है, उसी तरह परम पुरुष की भी जरूर होगी। पुरुष की उसी परछाई को प्रकृति कहा गया है। यह सत्य नहीं पर आभासी है। वैसे ही जैसे पेड़ की छाया सत्य नहीं पर आभासी है। किसी पेड़ की छांव बिल्कुल उस पेड़ की तरह होती है। सिर्फ एक फर्क के साथ कि वह अंधेरमयी या काली होती है। इसी तरह प्रकृति भी बिल्कुल पुरुष की तरह अनादि, अनंत, अजर, अमर और सर्वव्यापक है। केवल यही फर्क है कि उसमें पुरुष की तरह प्रकाश नहीं होता। क्योंकि वह पुरुष की आभासी छाया है।

जब सृष्टि बनना शुरू होती है, तो सबसे पहले निर्मित सबसे छोटा मूल कण अपने को उन्नत करने की कोशिश करता हुआ आगे से आगे बढ़ने लगता है। उसे आगे बढ़ने की शक्ति मूल प्रकृति से मिलती है। मतलब मूल प्रकृति उस कण की आत्मा के रूप में है। वैसे तो मूल प्रकृति आनंद के रास्ते ही पुरुष तक पहुंच सकती है, क्योंकि पूर्ण आनंद ही पुरुष का असली रूप है। पर अपना आनंद बढ़ाने के लिए उसे पहले अपने सृष्टिरूपी शरीर की सत्ता बढ़ानी होगी। क्योंकि यदि विभिन्न कणों का आपस में खूनी संघर्ष होता रहा, तो ग्रह, सूर्य आदि पिंड कैसे बनेंगे? यदि इन पिंडों का आपस में और अंदरूनी खूनी संघर्ष चलता रहा तो पृथ्वी जैसा शांत और स्थिर ग्रह कैसे बनेगा। अगर पृथ्वी पर डायनासोरों जैसे जीवो का खूनी विध्वंस जारी रहा तो मनुष्य जैसा तीव्र बुद्धि वाला व विकसित प्राणी कैसे बनेगा। जब तक जीव में अनुभव करने वाला मस्तिष्क नहीं बना, तब तक प्रकृति सत्ता के लालच में सृष्टि का विकास करती रही। सत्ता के लिए अनुभव की जरूरत नहीं है। हालांकि सत्ता और आनंद आपस में जुड़े हुए हैं। सत्ता का विकास होने से आनंद का विकास भी होता है। हालांकि वह बाद में दिखाई दिया जब मस्तिष्क बना। मस्तिष्क बनने पर तो जीव के विकास की रफ्तार कई गुना बढ़ गई, क्योंकि अब वह विकास के लिए अनुभव या आनंद से भी प्रेरित हो रहा था। अनुभव और आनंद लगभग एक ही चीज हैं। सत्ता से तो पहले भी प्रेरित हो रहा था। आदमी बनने पर उसने कठिन कुंडलिनी योग साधना की और उससे कुंडलिनी जागरण के रूप में परम आनंद का अनुभव प्राप्त किया। मतलब प्रकृति की पुरुष तक की यात्रा पूरी हो गई। मूल प्रकृति विकास करती हुई पुरुष में विलीन हो गई पर मूल प्रकृति भी वैसी ही रही। यह ऐसे ही है जैसे एक पेड़ से उसकी जितनी मर्जी परछाइयां बना लो। मतलब अगर पेड़ की परछाई अपना विकास करके कुछ और ही बन जाए। तब भी उस पेड़ की मूल परछाई तो वैसी ही रहेगी।

दोस्तों मूल प्रकृति तब तक अपने शुद्ध मूल रूप में थी, जब तक अनुभव करने वाले मस्तिष्क का निर्माण नहीं हो गया। जब अनुभवात्मक मस्तिष्क बना तब मूल प्रकृति में प्रकाश की तरंगें उमड़ने लगीं। इन्हीं तरंगों को हम अनुभव कहते हैं। ये प्रकाश तरंगें प्रकाशमान पुरुष से ही प्राप्त हुई थीं, बेशक आभासिक रूप में। मतलब प्रकृति और पुरुष का आपस में मिलन हो गया था। इसीलिए शास्त्रों में कहा है कि सृष्टि पुरुष और प्रकृति के जुड़ने से बनी है। ऐसा नहीं कहा है कि

खाली प्रकृति से बनी है। मतलब सृष्टि का निर्माण शुरु हो गया था। आप कहेंगे कि सृष्टि तो पहले से ही विकसित हो रही थी। बेशक ऐसा ही हो रहा था पर उसे अनुभव करने वाला तो कोई भी नहीं था उस समय। अंधेरे में हो रहे नृत्य का भला क्या महत्व है, जब उसे कोई देख ही नहीं सकता। जंगल में मोर नाचा, किसने देखा।मतलब सृष्टि की उत्पत्ति तभी मानी गई जब उसे अनुभव करने वाले जीव की और उसके रूप में प्रकृति पुरुष युग्म की उत्पत्ति हुई। फिर तो प्रकृति को पुरुष तक पहुंचने के लिए आनंद का सहारा भी मिल गया था। वह अधिक से अधिक आनंद की खोज करती हुई एक प्रकार से पुरुष की ही प्रचुर खोज कर रही थी। जागृति मिलने पर वह खोज खत्म हो गई और प्रकृति पुरुष में मिल गई। मतलब पेड़ की छाया पेड़ में मिल गई। पर पुरुष की छाया दिव्य है। यह चाहे कितनी ही बार पुरुष से मिल जाए, फिर भी यह कभी खत्म नहीं होती।

पुरुष भी प्रकृति की तरह दिव्य है। सूरज के प्रकाश को अगर लगातार निकाला जाता रहे तो यह कभी ना कभी खत्म हो जाएगा। पुरुष के प्रकाश को प्रकृति चाहे जितना मर्जी खींचती रहे, यह कभी कम नहीं होता, अनंत ही बना रहता है। जैसे एक आग का शोला अपना कुछ खोए बिना ही अनगिनत दीपकों को जला सकता है, वैसे ही एक पुरुष अपना कोई नुकसान किए बिना ही अनगिनत प्रकृतियों को जगमग कर सकता है।

कुंडलिनी योग प्रकृति को पुरुष की तरफ धकेलता है

दोस्तों! मिथक कल्पनाओं का आकर्षण हमेशा से रहा है। यह मानव मनोविज्ञान है जो मिथकों से बड़ा प्रभावित होता है। पुराने युग में भी विद्वान लोगों को छोड़कर आम लोग सीधे तौर पर दर्शन को ज्यादा महत्व नहीं देते थे। दर्शन उन्हें उबाऊ लगते थे। इसीलिए ऋषियों ने सत्य दर्शन पर आधारित मिथक कथाओं की रचना की जिनसे वेद पुराण भरे पड़े हैं। आज भी लोग टाइम ट्रेवल, स्पेस ट्रैवल आदि वैज्ञानिक सिद्धांतों से जुड़ी मिथक कथाओं के दीवाने हैं। इनसे मीडिया भरा पड़ा है। युग बदलता है पर मानव मनोविज्ञान वही रहता है। इसलिए सत्य को जगत में फैलाने के लिए दो किस्म के लोगों का परस्पर सहयोग अपेक्षित होता है। एक वह जो प्रत्यक्ष अनुभव के आधार पर सिद्धांत को प्रस्तुत करता है, और दूसरा वह जो उस पर आधारित मिथक कथाएं बनाता है। हो सकता है कि इस वेबसाइट के शास्त्र आधारित अध्यात्मवैज्ञानिक सिद्धांत भी कभी युगानुरूप मिथक कथाओं के रूप में उभरें।

आजकल के सुविधापूर्ण और वैज्ञानिक युग में लोगों के पास किसी भी विषय को विस्तार से समझने के लिए पर्याप्त समय और बल उपलब्ध है। पहले ऐसा नहीं था। एक बार महात्मा बुद्ध के एक शिष्य ने उनसे पूछा कि यह सांसारिक जन्ममरण रूपी दुख शुरु कैसे होता है। तो महात्मा बुद्ध ने कहा कि इसको जानने में समय बर्बाद करने की जरूरत नहीं है। बस इतना समझो कि इस दुख का अंत किया जा सकता है और उसके लिए प्रयास करो। आजकल लोगों के पास ब्लैकहोल और टाइम मशीन को समझने के लिए तो पर्याप्त समय है, पर उस आध्यात्मिक दर्शन को समझने के लिए नहीं है, जो मानव जीवन के मुख्य लक्ष्य से जुड़ा हुआ है। यह एक विडंबना ही है।

मित्रो, हम जिस चर्चा को छेड़े हुए हैं, वह पूरी तरह से शास्त्र सम्मत है। इसलिए यह प्रामाणिक भी मानी जा सकती है। यह कोई ख्याली पुलाव नहीं है। वैदिक सांख्य दर्शन के अनुसार प्रकृति और पुरुष दो अजर अमर और सर्वव्यापी तत्त्व हैं। शुद्ध पुरुष तो कभी सृष्टि को चला ही नहीं सकता क्योंकि वह तो पूर्ण परमात्मा है। उसकी संसार में प्रवृत्ति ही नहीं होती। लोक में भी अक्सर देखा जाता है कि जो संत पूर्ण समाधि में स्थित होता है, उसकी संसार में कोई प्रवृत्ति नहीं होती। बेशक उसमें प्रेरक शक्ति होती है। लोग उससे प्रेरणा लेकर या कहो उसकी तरह पूर्ण बनने के लिए बड़े-बड़े और अच्छे-अच्छे सांसारिक काम और आचरण करते हैं। परमात्मा के मामले में भी ऐसा ही होता है। उससे प्रकृति को विकास करने की अर्थात उसके जैसा पूर्ण बनने की प्रेरणा मिलती रहती है। इसी से सृष्टि के सभी काम चलायमान रहते हैं। काम करने वाली तो प्रकृति होती है। सृष्टि से काम कराने वाली प्रकृति है, तो शरीर से काम करवाने वाला अहंकार या जीवात्मा है।

लोग बोलते हैं कि सृष्टि के सभी काम अंधेरे में हो रहे हैं, मतलब उन्हें करने वाली कोई प्रकाशमय चेतना शक्ति नहीं है। बात सही भी है और गलत भी। देखा जाए तो वही अंधेरा तो काम करवा रहा है। पर इसमें प्रकाश का अप्रत्यक्ष योगदान भी होता है। अंधेरा किसके लिए काम करवा रहा है। अंधेरा प्रकाश के लिए काम करवा रहा है। प्रकृति पुरुष के लिए काम करवा रही है। पुरुष ही प्रकृति को खींच रहा है। अहंकार निरंकार के लिए काम करवा रहा है। जीवात्मा परमात्मा के लिए काम करवा रहा है। परमात्मा ही जीवात्मा को खींच रहा है। जीवात्मा तो कभी परमात्मा बन जाएगा। तो क्या प्रकृति भी कभी पुरुष बनेगी। अगर एक जीवात्मा परमात्मा बनेगा तो दूसरा जीवात्मा फिर पैदा हो जाएगा। अगर प्रकृति पुरुष बनेगी तो दूसरी प्रकृति कहां से आएगी क्योंकि प्रकृति तो एक ही है। जीवात्मा अनेक हैं। जब नई प्रकृति नहीं बनेगी तो सृष्टि भी थम जाएगी। जीवात्मा भी प्रकृति से ही बनते रहते हैं।

जीवात्मा प्रकृति और पुरुष का मिश्रण है। अगर प्रकृति पुरुष बन गई तो नए जीव भी पैदा नहीं हो पाएंगे, क्योंकि जीवात्मा ही नहीं बनेगी। मतलब प्रकृति कभी पुरुष में नहीं मिलती। या अगर मिलती है तो नई प्रकृति फिर से बन कर तैयार हो जाती है। कुंडलिनी योग तो है ही प्रकृति को पुरुष की तरफ अंतिम और निर्णायक धक्का देने के लिए। पर बनेगी कैसे। इसका हम अगली पोस्ट में विस्तार से विश्लेषण करेंगे।

कुंडलिनी जागरण केवल मनुष्य के सूक्ष्म शरीर से ही संभव है

दोस्तों, अंत में बात हट फिर के सूक्ष्म शरीर पर ही आती है। विभिन्न चर्चाओं से स्पष्ट है कि जगत सिकुड़ता हुआ अहंकार तक पहुंच जाता है। मतलब पारलौकिक सूक्ष्म शरीर के रूप में अहंकार ही बचता है। बेशक लौकिक सूक्ष्म शरीर में बुद्धि, मन, प्राण और इंद्रियां भी आती हैं। कई जगह यह केवल अहंकार, बुद्धि और मन से बना बताया गया है। कई जगह इसमें पंच तन्मात्राएं और पंचमहाभूत भी जोड़ दिए गए हैं। लौकिक सूक्ष्म शरीर के लिए तो यह सब ठीक है पर पारलौकिक सूक्ष्म शरीर में तो ये सब नहीं होने चाहिए। उसमें तो सिर्फ अहंकार होना चाहिए। कई जगह इस अहंकार को कारणशरीर के रूप में माना गया है। इसमें कर्म और संस्कार छिपे होते हैं, जो अगले जन्म का निर्धारण करते हैं। मान लो, परलोकिक सूक्ष्मशरीर मन, बुद्धि और अहंकार से बना होता है। पर वह स्थूल शरीर के बिना सोच-विचार कैसे कर सकता है। अगर नहीं कर सकता तो उसमें मन बुद्धि को मानने की क्या जरूरत है। यह एक जटिल विषय है।

चलो हम एक कोशिकीय जीवाणु को लेते हैं। यह सबसे सूक्ष्म जीवित प्राणी है, जिसे नंगी आंखों से नहीं देखा जा सकता। मान लेते हैं कि उसकी आत्मा या उसका अपने आप का स्वरूप एक पारलौकिक सूक्ष्म शरीर है। यह इसलिए क्योंकि उसके इतने छोटे स्थूल शरीर में अनुभव करने वाला मस्तिष्क नहीं हो सकता। वैज्ञानिकों को भी अभी तक इसका कोई सुराग नहीं मिला है। वह जीवाणु आदमी जैसे विकसित मस्तिष्क वाले प्राणी के जैसे ही आम जीवनचर्या के सभी काम करता है। वह चलता है, खाता है, पीता है, शिकार करता है, डरता है, भागता है, संभोग करता है, बच्चे पैदा करता है, लड़ाई झगड़े करता है, दोस्ती दुश्मनी समझता है, और निभाता है, आदि-आदि। सूचि बहुत लंबी है। समझ लो, वह सभी काम करता है। कई जगह तो आदमी से ज्यादा भी करता। इसका मतलब है कि उसमें आत्मा के साथ अहंकार, बुद्धि, मन, प्राण, पंच ज्ञानेंद्रियां, पंच तन्मात्राएं और पंचमहाभूत सब कुछ हैं। पर यह सब उसको तो महसूस होते नहीं। तो क्या इन सबके होने के लिए इन सब को महसूस करना जरूरी है। बिल्कुल नहीं। मतलब आत्मा खुद सूक्ष्म शरीर की तरह व्यवहार करती है। मान लिया कि जीवात्मा ऐसा व्यवहार करती है। वह इसलिए क्योंकि जीवात्मा अज्ञान के अंधेरे में फंसी होती है। उसने विकास करना होता है। वह विकास शरीर से ही हो सकता है। पर परमात्मा क्यों सूक्ष्मजीव की तरह व्यवहार करता है, वह तो पूर्ण विकसित है। निर्जीव सृष्टि भी प्राणी की तरह ही व्यवहार करती है। उदाहरण के लिए तारे भी पैदा होते हैं, बढ़ते हैं, लड़ते हैं, प्रजनन कार्य करते हैं, खाते हैं, उगलते हैं, शिकार करते हैं, लड़ाई झगड़ा करते हैं, भागते हैं, दोस्ती और दुश्मनी निभाते हैं, आदि आदि। तो क्या निर्जीव पदार्थों में भी जीवात्मा है। जरूर है। सांख्य दर्शन भी कहता है कि प्रकृति भी पुरुष अर्थात परमात्मा की तरह अनादि, अनंत और सर्वव्यापक है। मतलब यह प्रकृति भी जीवात्मा ही है। एक विशाल, सर्वव्यापक, वैश्विक या समष्टि जीवात्मा। इसे ब्रह्मा का सूक्ष्म शरीर भी कह सकते हैं। ब्रह्मा भी तो इसे महसूस नहीं करता। फिर भी सूक्ष्मशरीर होता है, और काम करता है। एक प्रकार से जीवात्मा के विकास के लिए अहंकार, बुद्धि, मन, प्राण, दस इंद्रियां, पांच तन्मात्राएं, और पंचमहाभूत होना जरूरी है। खैर अहंकार तो खुद ही जीवात्मा के रूप में है। क्योंकि ये सभी जरूरी हैं, इसीलिए ये सभी तत्व इकट्ठे हो गए। इनके इकट्ठा होने से एक शरीर बन गया। उसके साथ जीवात्मा का जुड़ाव हो गया। जीवात्मा तो प्रकृति के रूप में पहले से ही हर जगह और हर समय मौजूद था। समझ लो कि उसका एक कल्पित अंश नवनिर्मित शरीर से बंध गया। वही पहला जीवात्मा हुआ। वह पहला शरीर जीवाणु का था। फिर जीवाणु का शरीर विकसित होकर कीड़ों मकोड़ों का शरीर बना। फिर मछली मेंढक का, फिर बड़े जंतुओं का, बंदरों का और अंत में मनुष्य का। सूक्ष्म शरीर तो सब में एक जैसा ही है। सूक्ष्म शरीर में कोई विकास नहीं हुआ। वही इंद्रियां, वही प्राण, वही मन, वही बुद्धि आदि। मतलब जीवात्मा के विकास के लिए सूक्ष्म शरीर के अलावा अन्य कोई अन्य कुछ तत्व जरूरी नहीं। यह जरूर हुआ कि बड़े जीवों और मनुष्यों में सूक्ष्म शरीर का दायरा बढ़ गया। इसलिए जीवात्मा का विकास भी तेज हुआ। पर सूक्ष्म शरीर तो वही पौराणिक था। मनुष्य के सूक्ष्म शरीर में जो एक चीज विशेष हुई, जो किसी अन्य जीव के शरीर में नहीं है, वह है कुंडलिनी योग साधना की योग्यता। इससे आदमी अपने सूक्ष्म शरीर को इतना ऊंचा उठा लेता है कि उससे कुंडलिनी जागरण हो जाता है।

कुंडलिनी योग से आत्मा पर पड़ी अंधेरे की छाप मिटती है

मन में लहर बनने को सतोगुण कहते हैं। लहर मिटने को तमोगुण कहते हैं। लहर बनने, मिटने के बीच के बदलाव की गतिशील अवस्था को रजोगुण कहते हैं। जब कोई विचार बनता है तो वह सतोगुण की लहर होती है और जब मिटता है तो तमोगुण का अंधेरा छा जाता है। होती वह भी लहर ही है पर अंधेरा होने से दिखती नहीं। जितनी लहर ऊपर को उठती है, नीचे भी उतनी ही डूबती है, मतलब पाताल या गर्त या अंधेरे की तरफ जाती है। वैसे देखा जाए तो शुरुआती आभासिक अस्तित्व सतोगुण का ही है। तमोगुण तो आत्मा पर उसकी आभासी छाप है जो अंधेरे के रूप में होती है। हैं तो दोनों गुण झूठे या आभासी ही, पर सबसे पहले निर्गुण आत्मा में सतोगुण की लहर पैदा हुई। फिर उससे तमोगुण बना, उससे फिर सतोगुण, उससे फिर तमोगुण, फिर सतोगुण और ऐसा यह सिलसिला अनादिकाल से चलता आ रहा है। निर्गुण आत्मा भी सतोगुण की तरह ही है, जैसे कि यह प्रकाशमान है, आनंद से भरी हुई है, और अस्तित्व से भरपूर है, पर उसमें आभासी लहरें नहीं हैं। शरीर के द्वारा उसमें आभासी लहरें बनने से वह सतोगुण से युक्त जीवात्मा बन गया। हालांकि मूल परमात्मा हमेशा वैसा ही निर्गुण बना रहता है। उसमें कोई फर्क नहीं पड़ता। फिर जब एक बार जीवात्मा में एक बार सतोगुण बन गया, तब तो उपरोक्तानुसार गुणों का सिलसिला चलना ही था। पेड़ से बीज और बीज से पेड़ बनता रहता है। यही जन्म मरण का खेल या रोग, जो कुछ भी कह लो है। यह मैं नहीं शास्त्र कह रहे हैं। आदमी या कोई भी जीव मरने से भी इसीलिए डरता है क्योंकि उसे अंदेशा होता है कि उसे फिर से कष्टों से भरे हुए नए जन्म की प्रक्रिया से गुजरना पड़ेगा। यह अंदेशा उसे इसलिए होता है क्योंकि वह प्रतिदिन अपने जीवन में गुणों का चक्रवत परिवर्तन देखता रहता है। अंधेरे को अनुभव करने के बाद उसे प्रकाश को भी अनुभव करना पड़ता है। वह लगातार अंधेरे में नहीं रह सकता। क्योंकि दोनों एकदूसरे के सापेक्ष हैं। इसीलिए उसे मृत्यु रूपी अंधेरे से जन्म रूपी प्रकाश की तरफ़ जाने का अवचेतन मन में आभास होता है। अगर लगातार मृत्यु बनी रहती तब तो वह सभी कष्टों से रहित मुक्ति ही होती। तब तो उससे कोई न डरा करता।

अंधेरे में विचाररूपी प्रकाशमान लहर की सारी सूचना दर्ज होती है। जलरूप जीव की बीच वाली समान सतह आत्मा है। मैने जीव को जलरूप इसलिए कहा क्योंकि उसमें भी जल की तरह तरंगें उठती रहती हैं। शायद जल को इसीलिए देवता कहा जाता है। जब नीचे दबी हुई या नीचे डूबी हुई लहर खत्म होकर सतह के स्तर तक पहुंचती है, तब आत्मा को अपनी शांत अवस्था महसूस होने लगती है। वह पूरी तरह से महसूस होए, उससे पहले ही नई लहर फिर से ऊपर उठ जाती है, और वही प्रक्रिया दोहराई जाती है। यह सिलसिला लगातार चलता रहता है। इस तरह से आदमी आत्मा की शांति को प्राप्त नहीं कर पाता। हालांकि आत्मा सतोगुण की ऊंची लहर और तमोगुण की नीची लहर के बीच की शांत अवस्था है। पर ऐसा कहते हैं कि कुंडलिनी जागरण के रूप में उसका अनुभव सतोगुण के चरम पर होने पर ही होता है। यह सतोगुण का चरम कुंडलिनी योग की ध्यान साधना से ही प्राप्त होता है। मुझे लगता है कि बौद्ध लोग परिवर्तनशील आत्मा को इसी कारण से सत्य मानते हैं, क्योंकि गुणों के बदलने से परिवर्तनशील आत्मा को अपरिवर्तनशील आत्मा की अपेक्षा कुण्डलिनी जागरण के रूप में सतोगुण के शिखर को छूने का अधिक अवसर मिलता है। यह सतोगुण का चरम कुंडलिनी योग की ध्यान साधना से ही प्राप्त होता है। वैसे जिस बीच वाली अवस्था को हम आत्मा कह रहे हैं, वह शुद्ध आत्मा नहीं बल्कि जीवात्मा है जिसमें प्रकृति के तीनों गुण साम्यावस्था में हैं। जो कुंडलिनी जागरण से अनुभव होती है, वह शुद्ध आत्मा है, जो निर्गुण या गुणातीत है, मलिन जीवात्मा नहीं। इसलिए यहां कोई विरोधाभास नहीं है।

इस तरह से हम देख सकते हैं कि आत्मा प्रकृति के तीनों गुणों को अपने ऊपर आरोपित करके महसूस करती है। मतलब आत्मा प्रकृति का ही रूप धारण कर लेती है। मतलब कि आभासी प्रकृति के तीनों गुणों का रूप धारण कर लेती है। जब प्रकृति ही अस्तित्वहीन है तो उसके तीनों गुणों का अस्तित्व भी कैसे हो सकता है। इसी को भ्रमपूर्ण संसार कहते हैं। इसका मतलब सभी बदलाव झूठे हैं, पर बुद्धिस्ट लोग क्षणिकवाद मतलब परिवर्तनवाद को सत्य मानते हैं। शायद उन्होंने पुरुष और प्रकृति के संयोग को ही शुद्ध आत्मा समझा है। या कुछ और भी हो सकता है। इसी को शास्त्रों में ऐसा कहा है कि दुनिया प्रकृति और पुरुष के संयोग से बनी है। असल में प्रकृति का अस्तित्व ही नहीं है। कंप्यूटर गेम की तरह यह आभासी है पर आत्मा इस आभासी प्रकृति के रूप को धारण करके उसे अस्तित्व या सत्ता दे देता है। असली अस्तित्व तो सिर्फ आत्मा का ही है। तभी तो अद्वैत वेदांत में कहा है कि आत्मा ही सब कुछ है। इसके अलावा कुछ नहीं।

पर बेशक प्रकृति आभासी ही है पर व्यवहार में यह अपना असर तो छोड़ती ही है, जो आत्मा के ऊपर दृष्टिगोचर होता है। इसलिए सांख्य दर्शन के प्रकृतिपुरुषवाद रूपी द्विसत्तात्मक दर्शन को ज्यादा व्यावहारिक दर्शन कहते हैं। वैसे तो सभी दर्शनों में एक दूसरे की छाप दिखती है। पूर्व मीमांसा दर्शन के अपूर्ववाद को ही देख लो। यह दर्शन कहता है कि किसी भी कर्म से आत्मा में अपूर्व पैदा होता है। वह अपूर्व उस कर्म का फल मिलने पर ही नष्ट होता है। वह अपूर्व उस कर्म के द्वारा आत्मा पर पड़ने वाली अंधेरे की छाप ही है, जिसमें कर्म की सारी सूचना दबी होती है। जब यह छाप स्थूल रूप में किसी घटना के रूप में सामने आती है तो उसे ही हम उस कर्म का फल मिलना कहते हैं। क्योंकि बाहर निकलने से अपूर्व की ऊर्जा क्षीण या नष्ट हो गई। इसलिए आत्मा पर दर्ज अंधेरे की छाप भी मिट जाती है। शायद योग से इसी तरह कर्म क्षीण होते हैं। कुंडलिनी योग से कर्म संबंधी विचार मन में उमड़ते रहते हैं जिससे आत्मा पर उन से बनी अंधेरे की छांव मिटती रहती है। बेशक फल मिलने की अपेक्षा वह धीरे-धीरे मिटती है, पर मिटती तो है। इसीलिए कहते हैं कि योग से पाप नष्ट होते हैं। आत्मा पर आदमी की हरेक क्रियाशीलता दर्ज हो जाती है। चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक। चाहे उस क्रियाशीलता को कितनी ही चालाकी से या अनासक्ति से क्यों न अंजाम दिया गया हो। शायद इसीलिए कहते हैं कि परमात्मा से कोई बात नहीं छुपती। आत्मा पर दर्ज छाप को ही हम संस्कार या अवचेतन मन कहते हैं। हम जो कुछ भी सीखते हैं या पढ़ते हैं, वह सब कुछ तो हमें याद नहीं रहता। पर उससे हमें अपने अंदर एक रूपांतरण सा महसूस होता है। यह उनसे आत्मा पे पड़ी छाप से ही महसूस होता है। इसी से मुझे लगता है कि पुरानी यादें आत्मा में भंडारित रहती हैं। मस्तिष्क तो सिर्फ उन्हें तरंगों के स्थूल रूप में अभिव्यक्त करने का काम करता है। आत्मा को सूक्ष्म तरंग मान लो। पुरानी यादों को इसके ऊपर आरोपित ऑडियो विजुअल के सूक्ष्म सिग्नल मान लो। मस्तिष्क को डिकोडर और एंप्लीफायर मान लो, जो आत्मा पर मौजूद सूक्ष्म सिग्नल को पुनः ऑडियो विजुअल के स्थूल विचारों में रूपांतरित और प्रवर्धित कर देता है। इसका प्रमाण है, बहुत से लोगों को उनके पिछले जन्मों की घटनाओं का सही रूप में याद रहना। पिछले जन्म के उनके शरीर, मस्तिष्क, मन आदि सब कुछ जलकर खाक हो गए थे। फिर वे यादें अगल जन्म को कैसे गईं। वे आत्मा के ऊपर रहकर ही जा सकती हैं, अन्य तो कोई तरीका नहीं है।

दोस्तो, मुझे लगता है कि मैं पिछले जन्म में संगीत से जुड़ा हुआ था। सपने में मैं स्पष्ट और मधुर और भावपूर्ण धुनों में गाने, अकेले या जुलूस की भीड़ में उत्साहपूर्वक, विशेषकर देवी माता के भक्तिपूर्ण भजनों को अक्सर गाता हूं। कई गानों को तो मैंने उसी समय नींद से जागकर रिकॉर्ड भी कर लिया है। मैं अपने एक परिचित को जानता हूं जो कंप्यूटर से ही पूरा गाना तैयार कर लेता है। संगीत वगैरह सबकुछ सॉफ्टवेयर से एड हो जाता है। अगर माता की कृपा रही तो संभव है कि जल्दी ही मेरे सपने के भजनों की एक एलबम ही आ जाए।

कुंडलिनी योग से सतोगुण बढ़ता है

सभी मित्रों को अंतर्राष्ट्रीय योग दिवस की हार्दिक शुभकामनाएं।

दोस्तों, शास्त्रों के अनुसार सृष्टि पुरुष और प्रकृति के सहयोग से बनी है। प्रकृति में ही तीनों गुण होते हैं। पुरुष में नहीं। पुरुष तो गुणातीत है। वह तीनों गुणों से परे है। पुरुष शुद्ध आत्मा ही है। प्रकृति जड़ है। मतलब प्रकृति का अपना अस्तित्व नहीं है। प्रकृति आभासी है। फिर प्रकृति के तीनों गुणों को कौन महसूस करता है? यह पुरुष ही है जो प्रकृति के गुणों को महसूस करता है। प्रकृति को स्त्रीलिंग रूप इसलिए दिया गया है क्योंकि दोनों में ज्यादा समानता है। स्त्री भी अपने रूप और सौंदर्य को सजधज कर ज्यादा से ज्यादा दुनिया के लोगों को दिखाना चाहती है और प्रकृति भी। सुंदर प्रकृति को देखकर बरबस ही सुंदर स्त्री की याद आने लगती है। इसी तरह सुंदर स्त्री को देखकर मनमोहक प्रकृति जीवंत सी हो जाती है। पुरुष को बिना स्त्री को साथ लिए कहीं भी घूमने में पूरा मजा नहीं आता। दरअसल पुरुष प्रकृति के साथ जुड़ा हुआ अर्थात बंधा हुआ होता है। इसी को हम बद्ध जीवात्मा कहते हैं। जब गुणों के प्रति अनासक्ति के व्यवहार से वह प्रकृति से अलग हो जाता है तब वह फिर से मुक्त आत्मा अर्थात शुद्ध आत्मा बन जाता है। यहां यह ध्यान योग्य बात है कि मुक्त होने के लिए बंधना भी जरूरी है। मुक्ति का पहला कदम बंधन ही है। जो पशु खूंटे से बंधा ही नहीं है, वह उससे छूटेगा कैसे। आदमी की जीवित अवस्था में उसकी आत्मा प्रकृति के तीनों गुणों की चढ़ती उतरती तरंगों को महसूस करती है। इसी को आदमी की जीवित अवस्था का लक्षण माना जाता है। जिसमें जितनी ज्यादा और जितनी तेजी से लहरें बनती हैं, उसे उतना ही ज्यादा जीवंत माना जाता है। जब किसी प्रेमी से मिलन होता है तो सतोगुण की लहर ऊपर चढ़ती है। मन में चारों और प्रेम और आनंद सा उमड़ आता है। पुरानी यादें हसीन रूपों में ताजा हो जाती हैं। चेहरे पर मुस्कान और चमक छा जाती है। अच्छी भूख लगती है, काम करने को मन करता है। आदमी उत्तम मनस्कता से परिपूर्ण रहता है। जब उससे वियोग होता है तो सतोगुण की ऊपर चढ़ी हुई लहर नीचे उतरकर धरातल से भी नीचे गिर जाती है। सारा आनंद गायब सा हो जाता है। मनस्कता अवसाद में बदल जाती है। पुरानी हसीन यादें गहरे अंधेरे में गायब हो जाती हैं। मन में घृणा और उदासी का जैसा भाव छा जाता है। चेहरे पर शिकन और अंधेरा सा छा जाता है। भूख गायब हो जाती है। काम करने को मन नहीं करता। जो पहले सतोगुण की लहर थी, वह तमोगुण की लहर बन जाती है। सतोगुण और तमोगुण के बीच के परस्पर बदलाव के दौरान रजोगुण की छोटी लहर की अवस्था भी होती है। मतलब सतोगुण से तमोगुण में और तमोगुण से सतोगुण में एकदम से बदलाव नहीं होता बल्कि रजोगुण से होकर जाता है। रजोगुण को हम हल्की सी ऊपर उठी हुई लहर कह सकते हैं। आदमी का मूल स्वभाव रजोगुणी माना जाता है। मतलब वह काम में इतना व्यस्त रहता है कि मानसिक लहर को सतोगुण के ऊंचे स्तर तक कम ही उठा पाता है। साधु लोग साधना से उठा लेते हैं। देवता को सतोगुणी कहा जाता है। मतलब उनका सतोगुण उच्च स्तर का होता है। बेशक उसमें लहर नहीं होती क्योंकि उनके पास स्थूल शरीर नहीं होता। यह जो विभिन्न देवताओं को विभिन्न मनुष्याकार मूर्तियों के रूप दिए गए हैं, वे सब कल्पित हैं, हालांकि उनके वास्तविक रूप से बहुत मिलते हैं। इसी तरह सभी पशु योनियों को तमोगुणी कहा गया है। ऐसा उनमें दिमाग अर्थात मन की कमी से होता है। इसीलिए कहते हैं कि सतोगुणी देवलोक को जाते हैं या मुक्त हो जाते हैं, रजोगुणी दोबारा मनुष्य योनि को प्राप्त करते हैं और तमोगुणी पशु योनि को प्राप्त करते हैं।

अब प्रश्न है कि मृत्यु के बाद जब तक शरीर नहीं मिलता तब तक आत्मा में गुण किस अवस्था में रहते हैं। हमने पिछले लेख में भी शास्त्र के इस तथ्य पर प्रकाश डाला था कि उस समय तीनों गुण साम्यावस्था में रहते हैं। साम्यावस्था का मतलब है कि तीनों गुणों की मात्रा आपस में भिन्नता रख सकती है, पर हर एक गुण एक निश्चित स्तर पर ही होगा। मतलब बदलेगा नहीं। क्योंकि शरीर के बिना उसमें लहरें नहीं बन पाएंगी। मुझे पवित्र आत्मा में सतोगुण की ज्यादा मात्रा अनुभव हुई थी। ऐसा लगा था कि एक अनंत आकाश के जैसा सूर्य एक पतली झिल्ली या वील से ढका हुआ है और जिस से अंधेरा बन गया है। पर वह अंधेरा काजल जैसा चमकीला है, और जैसे सूर्य की किरणों का दबाव उस ढकने वाली झिल्ली को फोड़ना चाहता है। सतोगुण प्रकाश का भी प्रतीक है। फिर भी कुछ नहीं बदल रहा था। कहीं कोई गति नहीं थी। जो उबाल के जैसी अदृश्य गति सी महसूस हो रही थी, वह शायद आधारभूत रजोगुण था। हालांकि वह आभासी गति ही थी, असली नहीं। तमोगुण तो काजल के जैसे अंधेरे के रूप में था ही। काजल में जो चमक है उसे सतोगुण मान लो। फिर भी वह आत्मा मुझे पवित्र और सात्विक लग रही थी। एक बार योग के दौरान एक दुष्ट आत्मा भी मुझे कुछ क्षणों के लिए महसूस हुई थी। उसका अंधेरा डरावना और पाप, घृणा और बदले की

भावना से भरा लग रहा था। उस आत्मा ने मेरे एक परिचित का उसी दिन नुकसान भी किया था, पर वह सुरक्षित बच गया था। मतलब कि आत्माओं के बीच में विभिन्न गुण-समूहों के रूप में सूक्ष्म वेरिएशंस अर्थात विभिन्नताऐं होती हैं। सतही तौर पर हमें सभी आत्माएं एक जैसी लगती है, पर ऐसा नहीं होता। किसी आदमी का आत्मा वैसा ही होता है जैसे उसके सभी जन्मों के गुण और कर्म होते हैं।

यहां एक मनोवैज्ञानिक तथ्य भी है जो योग से संबंधित है। आसक्ति के साथ अपनाई गई दुनियादारी से तमोगुण बनता है। पर अगर कुंडलिनी योग से उससे आसक्ति निकाल दी जाए तो वही दुनियादारी सतोगुण बन जाती है। मतलब कि योग से सतोगुण बढ़ता है। रजोगुण तो गति का ही नाम है। मतलब तमोगुण सतोगुण की तरफ जाते हुए रजोगुण से होकर जाता है। मतलब कि सतोगुण के तमोगुण में और तमोगुण के सतोगुण में परिवर्तित होने की क्रिया को ही रजोगुण कहते हैं। इसमें सतोगुण और तमोगुण दोनों की हिस्सेदारी होती है, क्योंकि एक गुण मिट रहा होता है और दूसरा गुण बन रहा होता है। जो तमोगुण से सतोगुण की तरफ जाने की आत्मा की स्वाभाविक या नैसर्गिक प्रवृत्ति है, वह स्वाभाविक रजोगुण है, और वही मुझे आत्मा में एक आभासी उबाल या उफान के रूप में महसूस हुई थी। सतोगुण से तमोगुण की तरफ लोग स्वाभाविक प्रवृत्ति को नजरअंदाज करते हुए बुरे या घटिया या पापपूर्ण काम करके जानबूझ कर जाते हैं। कई बार सतोगुण से सीधे तमोगुण में घुस जाते हैं और कई बार रजोगुण से होकर धीरे धीरे जाते हैं। रजोगुण वैसे तो दोनों परिस्थितियों में बीच में आता है। बेशक पहली स्थिति में थोड़ा सा और दूसरी स्थिति में ज्यादा। तमोगुण से कई योगी एग्रेसिव अर्थात जबरदस्त तांत्रिक कुंडलिनी योग से एकदम से सतोगुण में घुस जाते हैं और कई लोग आम दुनियादारी से होकर और लंबे समय तक रजोगुण से होते हुए सतोगुण तक पहुंचते हैं। गुण परिवर्तन या गुण रूपांतरण का यह सिलसिला ऐसे ही चलता रहता है।

कुंडलिनी योग रूपी ऐप से ही मनरूपी हार्डडिस्क पूरी तरह से फॉर्मेट हो सकती है

दोस्तों, प्रकृति इस सृष्टि की माता है और पुरुष पिता है। हर एक वस्तु प्रकृति और पुरुष के सहयोग से बनी है। प्रकृति श्यामपट्ट है तो पुरुष उस पर चल रहा चलचित्र है। श्यामपट्ट नहीं है तो चलचित्र नहीं है। चलचित्र नहीं है तो श्यामपट्ट भी नहीं है। दोनों एक-दूसरे से हैं। अलग-अलग रहना उनके लिए संभव नहीं है। इसी तरह यदि प्रकृति रूपी तमोगुण का अंधेरा नहीं है तो प्रकाश रुप जगत को नहीं दिखाया जा सकता।

सफेद चाक से सफेद बोर्ड पर नहीं लिखा जा सकता। सफेद चौक से सिर्फ काले ब्लैक बोर्ड पर ही लिखा जा सकता है। इसी तरह केवल चेतन पुरुष से भी जगत रूपी चित्र नहीं बनाया जा सकता है। जगत चित्र के निर्माण के लिए अचेतन प्रकृति का आधार भी उपलब्ध होना चाहिए। यह सब अध्यात्म है। यहां सारा संसार मन, मस्तिष्क के अंदर है। हमें भौतिक रूप में मूल कण तक जाने की जरूरत नहीं है। यहां हर पल संसार का जन्म और मरण चल रहा है। नए चित्र बन रहे हैं, पुराने मिट रहे हैं। प्रकृति खाली व अन्धकार से भरा मन रूपी ब्लैकबोर्ड है, तो पुरुष चेतन अनुभूति रूपी स्याही। लगातार लिखा और मिटाया जा रहा है। न ब्लैक बोर्ड कभी नष्ट होता है, और न ही कभी स्याही। दोनों ही अजर, अमर और शाश्वत हैं। दोनों ही अस्तित्व के दो विपरीत ध्रुव हैं। एक यिन है तो एक यांग है। एक मां है जो अपने ऊपर चेतना रूपी उज्जवल स्याही की क्रीडा को स्वीकार करती है। एक पिता है जो अपनी उज्जवल चित्रकारी के लिए अपनी प्रियतमा प्रकृति को आकर्षित करता रहता है। वह जैसे जैसे चित्र बनाता जाता है, वैसे वैसे पदार्थों का जन्म होता जाता है। यह सारी सृष्टि चित्रात्मक है, असली नहीं। मस्तिष्क से बाहर की स्थूल भौतिकता को भी देखें। तो वह भी चित्रात्मक ही है, बस स्थूल चित्र थोड़े ज्यादा स्थिर होते हैं, और क्रमवार व धीरे धीरे बनते हैं। जैसे कि सबसे पहले बाहर के स्थूल आकाश में मूल कणों के चित्र बनेंगे। फिर वे आपस में क्रिया और प्रतिक्रिया करते हुए आगे से आगे एक निर्दिष्ट क्रम व वैज्ञानिक सिद्धांत के अनुसार नए-नए चित्र बनाते जाएंगे। मस्तिष्क के बाहर केवल मूल कण के चित्र ही उकेरे जाते हैं। बाद में वे प्रकृति माता के गर्भ में बढ़ते हुए विकसित संसार रूपी विभिन्न चित्र बन जाते हैं। पर मस्तिष्क के आकाश में जैसा मर्जी चित्र पल भर में बन जाता है। ऐसा इसलिए होता है क्योंकि वह बाहर के चित्र का प्रतिबिंब होता है, असली चित्र नहीं। हालांकि बिंब और प्रतिबिंब के स्वरूप में कोई अंतर नहीं होता। यह ऐसे ही है, जैसे मानसरोवर के जल में बने कैलाश के प्रतिबिंब को कोई अपनी आंखों से देख ले। पर्वत का वह प्रतिबिंब तो जल में पूरे दिन भर बना रहेगा और वह धीरे-धीरे बना था। रात को वह बिल्कुल नहीं होगा। फिर जैसे-जैसे सूर्य उगेगा और चढ़ेगा, वह प्रतिबिंब थोड़ा थोड़ा साफ और बड़ा होता जाएगा। उसे बनाने के लिए बहुत से कारकों का

होना जरूरी है। पर आंख ने उस प्रतिबिंब का प्रतिबिंब मस्तिष्क में एकदम से बनाया क्योंकि वह पहले ही पूरा बना हुआ था। उसे बनाने के लिए अन्य कुछ नहीं, बस एक आंख और मस्तिष्क से युक्त शरीर चाहिए था। हैं तो दोनों चित्र एक जैसे ही। इसी तरह बाहर के आकाश में बने जगत-चित्रों को बनाने में अरबों-खरबों वर्ष लगे। पर उन चित्रों का चित्र बनाने के लिए सिर्फ एक शरीर चाहिए जो पल भर में उन चित्रों का चित्र खींच लेता है। बाहर के चित्रों का तो हमें पता भी नहीं चलता, क्योंकि हम उन्हें महसूस ही नहीं कर सकते। हम तो केवल भीतर के चित्रों को ही महसूस करते हैं। बाहर का अंदाजा तो हम सिर्फ भीतर से ही लगा सकते हैं। जब भीतर का जगत-चित्र मिटता है, तो उसका निशान ब्लैकबोर्ड पर रह जाता है। इसे ही हम सूक्ष्म शरीर कहते हैं जिस पर आदमी के पिछले सभी जन्मों के चित्र सूक्ष्म रूप में दबे रहते हैं। यह ऐसे ही है जैसे फोन की मेमोरी से डाटा डिलीट करने के बाद भी वह उसमें छुपा हुआ रहता है, जिसे फिर से ढूंढा और रिट्रीव किया जा सकता है। कुंडलिनी योग रूपी ऐप से ही इसे पूरी तरह से खारिज अर्थात इरेज किया जा सकता है। यह शरीर एक नायाब इलेक्ट्रॉनिक कैमरे की तरह है। कैमरा खराब होने से उसके अन्दर के सारे चित्र भी मिट जाते हैं, पर बिजली भी रहती है, और कैमरे की स्क्रीन बनाने वाले पदार्थ भी। मतलब शरीर के नाश के साथ जगत-चित्र नष्ट हो जाते हैं, पर पुरुष और प्रकृति तब भी रहते हैं। ये दोनों सनातन हैं। सनातन केवल शून्य-आकाश ही हो सकता है, और कुछ नहीं। मतलब वही शून्य-आकाश पुरुष है, और वही शून्य-आकाश प्रकृति भी है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू की तरह हैं।

सजीव शून्य-आकाश मतलब पुरुष भ्रम से निर्जीव शून्य-आकाश मतलब प्रकृति बन जाता है। हालांकि मूल पुरुष-आकाश वैसा ही रहता है। उसी मूल पुरुष-आकाश से अपने ही भ्रमित रूप पर चित्र उकेरे जाते रहते हैं। मूल पुरुष अर्थात पुरुषोत्तम या परमात्मा है, जबकि भ्रमित पुरुष जीवात्मा या प्रकृति है। यह ऐसे ही है जैसे शिव पुराण में कहा गया है कि एकमात्र शिव से नर और मादा मतलब पुरुष और प्रकृति का जोड़ा पैदा हुआ।

कुंडलिनी शक्ति की सहायता से ही देवी भगवती ब्रह्मा-विष्णु सहित संपूर्ण सृष्टि की रचना करती है

सभी मित्रों को नवरात्र पर्व की बधाइयां

मित्रों, सभी पुराणों में सृष्टिरचना का वर्णन लगभग एकजैसा ही है। बस सभी अपनेअपने अराध्यदेव को सर्वोपरि मानते हैं। मतलब विष्णु पुराण में विष्णु को, शिव पुराण में शिव को, तो देवीपुराण में भगवती देवी को इष्ट मानते हैं। शिव पुराण में इस बारे कथा आती है कि शिव अकेले ही थे, पर पूर्ण थे। एकबार वैसे ही उनके मन में हास्यविनोद के लिए एक से दो बनने की इच्छा पैदा हुई। इसलिए उन्होने अपने शरीर को शिव और पार्वती, दो शरीरों में प्रकट किया। फिर शिव और पार्वती से क्रमशः पुरुष और प्रकृति (स्त्री) की उत्पत्ति हुई। उन दोनों को निर्गुण शिव ने आकाशवाणी से तप करने को कहा। उन दोनों ने जब तप करने के लिए स्थान मांगा तो निर्गुण शिव ने अपने रूप से काशी नगरी बना दी। तपस्या के श्रम से उनके शरीर से अनेक जलधाराएं उत्पन्न हो गईं, जिससे सारा शून्य भर गया। उस समय कुछ भी नहीं दिखाई पड़ता था। उस आश्चर्य को देखने के लिए जब पुरुषरूप विष्णु ने सिर हिलाया तो उनके कान से मणि नीचे गिर गई। वह मणिकर्णिका तीर्थ बना। जब वह काशी नगरी (पंचकोशात्मिका/पांच कोस विस्तार वाली) पानी में डूबने लगी तो शिव ने उसे अपने त्रिशूल पर स्थापित कर लिया। उसके बाद विष्णु ने प्रकृति नामक अपनी पत्नी के साथ वहां शयन किया। तब शंकर की आज्ञा से उनके नाभिकमल से ब्रह्मा प्रकट हुए। तब उन्होंने शिव आज्ञा से अद्‌भुत सृष्टि की रचना की। उन्होंने चौदह लोकों का निर्माण किया। इस ब्रह्मांड का विस्तार पचास करोड़ योजन है। ब्रह्मांड में कर्म से बंधे प्राणी मुझे कैसे प्राप्त होंगे, ऐसा सोच कर शिव ने काशी ब्रह्मांड से अलग रखा। शिव ने अपने अविमुक्त नामक मोक्षदायक लिंग को वहां स्थापित किया। ब्रह्मा का एक दिन पूरा होने पर भी उस काशी का नाश नहीं होता। उस समय शिव उसे अपने त्रिशूल पर धारण करते हैं। ब्रह्मा द्वारा पुनः सृष्टि किए जाने पर वे काशी को पुनः स्थापित करते हैं।

उपरोक्त कथा का स्पष्टीकरण

कथा का शुरुवाती भाग तो स्वयं विवरणात्मक है। पुरुष और स्त्री तभी विवाह करेंगे और घर बनाने की सोचेंगे अगर उनके पास उस लायक स्थान होगा। मूलभूत आवश्यकता स्थान की है। संसाधन और संपत्ति तो वे बाद में भी जोड़ सकते हैं। उन्हें विवाह के लिए कहना ही तप के लिए कहना है। विवाह भी एक यज्ञ है, जिसे हम गृहस्थ रूपी तप के लिए दीक्षा समारोह मान सकते हैं। उनके पिता आदि ने उन्हें जमीन का टुकड़ा दे दिया गृहस्थी बसाने को या कहो कि उन्हें अपनी जमीनी दुनिया में जगह दे दी। वही परमपिता के द्वारा प्रदत्त काशी है। वह शिव का ही रूप है, क्योंकि सबकुछ शिवमय ही है। वैसे भी सभी का अपनी जमीन जायदाद के साथ आत्मभाव या अहम जुड़ा होता है। वे वहां तप करते हैं, मतलब सृष्टि विकास के शुभ विचार को मन में लेकर आपस में प्रेमविहार डेटिंग आदि करते हैं। उससे वे दोनों प्रेमरस में डूब जाते हैं। जल भी रसरूप ही है। प्रेम की तुलना जल से की गई है। चारों ओर जल ही जल, मतलब प्रेम ही प्रेम। प्रेमियों को प्रेम के इलावा कुछ नहीं दिखता। शून्य भर गया मतलब अवसाद की अवस्था प्रेम से भर गई। पुरुष जब इससे आश्चर्यचकित होकर यह देखता है तो उसके मन में कुछ काम करने का विचार पैदा होता है, मतलब उसमें थोड़ी व्यवहार बुद्धि आने लगती है। इसीको कथा में ऐसे दिखाया गया है कि उसके कान से मणि गिरने से मणिकर्णिका तीर्थ बन जाता है। तीर्थ इसलिए क्योंकि उसकी व्यवहार बुद्धि या रचना में अथाह प्रेम मिश्रित होता है, जिससे उसमें शुद्धता, दिव्यता और आत्मीयता बनी रहती है। फिर भी प्रेम बढ़ता ही गया, जिससे वे प्रेमांध से होकर अपनी दिनचर्या भी भूलने लगे। उन्हें यह भी सुध नहीं रही कि वे कहां हैं, क्या वक्त है और क्या करना है। इसीको ऐसा कहा गया है कि काशी नगरी जल में डूबने लगी। फिर शिव के स्मरण से उनका दुनियादारी वाला रूझान लौटा। त्रिशूल तीन गुणों का प्रतीक है, और दुनियादारी भी त्रिगुणमयी ही होती है। फिर वे बड़ों और गुरुओं की प्रेरणा से और अपनी इंस्टिंक्ट से संतानोत्पत्ति के लिए एकसाथ शयन करने लगे। फिर स्त्री का गर्भ बन गया। वह भी विष्णुस्वरूप ही है। वह भी जल में स्थित था, क्योंकि गर्भ जल से भरा होता है। विष्णु को क्षीरसागर में शयन करते हुए बताया गया। गर्भ का जल भी खीर की तरह पोषण से भरपूर होता है जो बच्चे की परवरिश करता है। उसे भी मां पुत्र के बीच प्रेम रस कह सकते हैं। काशी नगरी भी उसीको कह सकते हैं क्योंकि उसी पर या उसीके कारण मां पुत्र सृष्टि के लिए तप करते हैं अर्थात गर्भ का महान कष्ट सहते हैं। निद्रावस्था में दोनों साथ में सोए होते हैं। तभी गर्भनाल से जुड़ा गर्भ बढ़ने लगता है, और मनुष्याकार ले लेता है। उसे ही कमल कहा गया है, क्योंकि सभी चक्रों को कमल रूप दिखाया जाता है,

विशेषकर सहस्रार चक्र को, जो एक हजार पंखुड़ियों के साथ सबसे बड़ा कमल है। मस्तिष्क विकसित होने पर उसी पर मन अर्थात ब्रह्मा का जन्म होता है। मन में चित्रविचित्र दृष्य, विचार, और अनुभव ही ब्रह्मांड के रूप में विकसित होते रहते हैं। पाठकों को यह शंका हो सकती है कि पिता तो विष्णु को कहा था, न कि गर्भ में पल रहे पुत्र को। तो इसका भावार्थ यह है कि पुत्र को शास्त्रों में पितारूप ही कहा गया है, इसीलिए पुत्र को पिता के आत्मज के रूप से भी संबोधित किया जाता है। जो यह कहा गया है कि ब्रह्मांड के नष्ट होने पर भी काशी नगरी पूर्ववत बनी रहती है, उसका यही अर्थ है कि अगर आदमी मर भी जाए तो माताओं का गर्भाशय वैसा ही बना रहता है। बच्चे के जन्म के बाद गर्भाशय सिकुड़ कर अपने मूल रूप में आ जाता है। इसको संभवतः ऐसा कहा गया है कि ब्रह्मांड के नष्ट होने के साथ वह शिव के त्रिशूल पर स्थित हो जाता है। इसका मतलब साम्यावस्था में त्रिगुणस्वरूपता ही है, क्योंकि ऐसी स्थिति में प्रकृति मूलरूप में विद्यमान तो रहती है, पर सृष्टिकाल का कोई काम नहीं करती। वह गर्भाशय सर्वश्रेष्ठ तपोभूमि और मुक्तिभूमि है, क्योंकि वहां बेशक कष्ट झेलने पड़ते हैं, पर संस्कार वहीं पड़ते हैं, जो आगे जाकर आदमी को मोक्ष दिलवाते हैं। इसीलिए कहा है कि स्त्री को गर्भावस्था के दौरान आध्यात्मिक संगति और सत्कर्म करने चाहिए। शास्त्रों में ऐसे बहुत से उदाहरण हैं, जब आदमी ने गर्भ में रहकर ही आध्यात्मिक साधना कर ली थी। गर्भाशय को गड्ढे जैसी अंधेरी जगह भी कह सकते हैं। अंधेरे को मूलाधार का स्वरूप माना गया है। वहां से शक्ति सीधी सहस्रार को जाती है जागृति के लिए। शिव के द्वारा श्मशान में तप करना गड्ढे में साधना करना ही है। रावण ने भी गड्ढे में शिव की आराधना करके ही उनके दर्शन पाए थे। वहां अगर कुंडलिनी शक्ति को केन्द्रित किया जाए तो गर्भस्थ बालक की बाद में चलकर मुक्ति अटल या अविलंब व विशेष है। अ का मतलब अटल या अविलंब, और वि का मतलब विशेष है। इसीलिए वहां अविमुक्त लिंग स्थित कहा गया है, जिसका स्नान गंगाजल मतलब कुंडलिनी शक्ति से कराकर जरूर ध्यान पूजन करते रहना चाहिए, ऐसा कहा है। संभवतः यह नाभिचक्र के आसपास ही है। संभवतः गर्भस्थ शिशु के जल में हिलने से जो आवाज होती है, वह कान तक पहुंच कर मणि की झनझनाहट की तरह सुखद होती है। क्योंकि वह अंदर अंदर से ही महसूस होती है, इसलिए उसका नाम मणिकर्णिका है। मतलब वह मणि की तरह श्वेत अस्थियों से प्रवाहित होकर कर्णिका अर्थात कान तक पहुंचती है, न कि वायु से होकर।
फिर कहते हैं कि काशी में जो कोई भी जीव (कीट पतंगा भी) जन्मता है, या मरता है, वह जरूर मोक्ष को प्राप्त होता है। शास्त्रों में हर जगह कहा है कि मुक्ति का अधिकार सिर्फ और सिर्फ मनुष्य को है। मतलब जो जीव मनुष्य के गर्भ में आ गया, वह अवश्य मुक्त हो जाएगा, बशर्ते वह मनुष्य बन कर रहे। फिर मरने की बात आई। यह मुझे तांत्रिक लगती है। गर्भ में शिशु होता है, और वह भोले शंकर की तरह मुक्त जैसा ही होता है, स्वभाव से। पूरी दुनियादारी को सही से निभाते हुए जो बच्चे के जैसा अद्वैतशील बना रहेगा मरते समय भी, वह जरूर मुक्त हो जाएगा। यौनतंत्र की ऊर्जा बच्चे के जन्म को न जाकर जागृति को जाती है। मतलब जिस काशी में बच्चा जन्म लेता है, जागृत व्यक्ति भी उसी में जन्म लेता है। जागृत व्यक्ति तो मरता भी उसी में है। आम आदमी तो किसी भी साधारण अवस्था में मर सकता है। क का मतलब जल होता है, और शी से शयन बना है। मतलब जल में शयन। ऐसे तो विष्णु भगवान ही होते हैं जो शेषनाग पर सोते हैं। इससे भी लगता है कि काशी गर्भाशय जैसी चीज का रूपक है।
कहते हैं कि देवी ने पहले शून्य आकाश में जल पैदा किया। फिर उन देवी भगवती की शक्ति से भगवान विष्णु जाग गए जो जल में शेषनाग पर सोए हुए थे। दरअसल विष्णु सोई हुई कुंडलिनी शक्ति अर्थात अव्यक्त जीवात्मा हैं। स्त्री जब गर्भवती होती है तो उसके गर्भ के जल में भ्रूण प्रकट हो जाता है। वह विकसित हुए मनुष्याकार नन्हें बालक का रूप ले लेता है, और सबकुछ अनुभव करने लगता है, अर्थात जाग जाता है। वह गर्भनाल के माध्यम से स्त्री के शरीर से जुड़ा होता है। वास्तव में मनुष्य का असली रूप फन उठाए नाग के जैसा है। वही स्त्री का रूप दिखाया गया है। उसे ही ऐसे कहा गया है कि वह नाग विष्णु की रक्षा करता था। एक स्त्री अपने गर्भ को कौन सी सुरक्षा नहीं देती। देवी पुराण में तो देवी को विष्णु से भी बड़ा और सृष्टि रचयिता दिखाया गया है। उसमें दलील दी गई है कि कौन अपनी इच्छा से स्त्री के गर्भ में आकर जन्म लेना चाहता है, क्योंकि गर्भ तो एक कैदखाना है, और उसमें होने वाली समस्याएं नरक की यातनाओं से कम नहीं है। यह तो देवी है जो उसे गर्भ में आने को मजबूर करती है। मतलब इसमें पुराण खुद स्पष्ट कर रहा है कि विष्णु एक गर्भस्थ बालक है, ब्रह्मा उसके द्वारा पैदा किया हुआ उसका मन है, और उसमें विभिन्न विचार ही विविधताओं से भरी सृष्टि है। साथ में यह भी कि उस बालक को गर्भ में लाने वाली उसकी माता ही देवी भगवती है।
निकट के प्रयागराज तीर्थ में मरने से स्वर्ग आदि शुभ लोक प्राप्त होते हैं। प्र मतलब प्रचुर और याग मतलब यज्ञ। यज्ञ पुण्य कर्म को कहते हैं। प्रयाग संभवतः मणिपुर चक्र को कहा गया हो। क्योंकि यहां यज्ञ होता बताया जाता है, प्राणों

की आहुतियों से। वैसे भी पेट से ही भूख लगती है, और उसीकी मांसपेशियों की हलचल से सत्कर्म होते हैं। मतलब गहरी और लंबी यौगिक सांस पेट से चलती है, और इसी किस्म की सांस से पापकर्म भस्म होते हैं और पुण्यकर्म होते हैं। उथली, तेज और छाती की सांस से तो क्रोध आदि मन के दोष बढ़ते हैं, जिनसे पाप नष्ट न होकर बढ़ते हैं। मणिकर्णिका नाम भी शायद इसलिए होगा कि जब गर्भस्थ बालक हिलता है या सिर हिलाता है तो उसकी आवाज नाभि क्षेत्र में कान लगा कर सुनी जा सकती है। मणिपुर चक्र को तीर्थ इसीलिए कहा गया है जैसा ऊपर बताया गया है। अब हो सकता है कि इस विश्लेषण के सभी भाग सही हों। कुछ न भी हों तो भी कथा को याद रखने के लिए फायदेमंद ही है।

मधु कैटभ नाम के दो राक्षस जो नारायण के कान की मैल से पैदा हुए, उन्होंने वेदपुराण को मतलब चेतना या ज्ञान को हर के पूरी सृष्टि के आस्तित्व को खतरे में डाल दिया था। फिर देवी ने विष्णु को शक्ति देकर उनका वध करवाया। वास्तव में जब आदमी के कान में संक्रमण का मैल होता है, तब वह दर्द आदि से अपना सिर एक तरफ को टेढ़ा रखता है। भ्रूण के सिर को डेढ़ा करने को ही उसके कान की मैल कहा गया है। इससे वह समय आने पर बच्चादानी से बाहर नहीं निकल पाता, और उसका जीवन संकट में पड़ जाता है। फिर मां के खून से प्राप्त शक्ति से वह सिर को सीधा करने की कोशिश करता है। मां की शक्ति से बच्चादानी भी जोर लगाकर इसमें उसकी मदद करती है। इससे वह सीधा हो जाता है मतलब मधुकैटभ मर जाते हैं और बच्चा जन्म ले लेता है मतलब सृष्टि बच जाती है।

कुंडलिनी ही सांख्य दर्शन का पुरुष है, जिसका समाधि रूपी कुंडलिनी जागरण के द्वारा पूर्ण व प्रकृति से पृथक रूप में अनुभव ही योग का मुख्य ध्येय है

दोस्तो, पिछली पोस्टों में मैं कुंडलिनी के बारे में कुछ दुर्लभ रहस्य साझा कर रहा था। गुरु आदि अपने देह स्वरूप में जितने ज्यादा जीवंत और आध्यात्मिक होते हैं, कुंडलिनी के रूप में उनका मानसिक रूप भी उतना ही ज्यादा मजबूत होता है। यहाँ तक कि वह आंतरिक मानसिक रूप इतना मजबूत होता है कि उसके आगे दूसरे मानसिक रूप या विचार तो फीके पड़ते ही हैं, पर साथ में सारे बाहरी भौतिक रूप भी फीके पड़ जाते हैं। कृष्ण और राम ऐसे ही कुंडलिनी पुरुष थे, इसीलिए उन्हें अवतार माना जाता है। उनके कुंडलिनी रूप अर्थात ध्यान रूप से अनगिनत लोग संसारसागर से तर गए। युगों बीत गए, पर आज भी वे असरदार हैं। वैसे तो कुंडलिनी पुरुष में सभी मानवीय और आध्यात्मिक गुण होने चाहिए, पर निःस्वार्थ भाव, निरहंकारता, और उदारता इनमें सबसे महत्वपूर्ण गुण प्रतीत होते हैं। आप खुद ही सोचो कि अगर कोई अपने स्वार्थ, अहंकार और संकीर्णता के भाव को जरा भी प्रदर्शित करता है, तो उससे बनी-बनाई दोस्ती भी बिगड़ जाती है, प्रेम गया तेल लेने। और जहाँ प्रेम नहीं, वहाँ कुंडलिनी भी नहीं, क्योंकि कुंडलिनी प्रेमपूर्ण मानसिक चिंतन के आश्रित ही तो है। मैं एक संयुक्त और सामाजिक परिवार में पला-बढ़ा। चारों ओर प्रेमपूर्ण व्यवहार का बोलबाला होता था। थोड़ी-बहुत खटपट तो तब भी होती थी, पर तब वह गौण और निंदनीय होती थी, आजकल की तरह मुख्य और प्रशंसनीय नहीं। आज तो अगर कोई किसी के बुरे व्यवहार के बारे में शिकायत भी करे, तो भी उसे ही किनारे लगाया जाता है, उसके साथ ज्यादा से ज्यादा दिखावे की सहानुभूति प्रदर्शित करके। प्रश्नकर्ता पर ही प्रश्नचिन्ह लगाया जाता है। इसलिए चुप ही रहना पड़ता है। उस समय तो बुरा वर्ताव करने वालों की समाज के द्वारा खटिया खड़ी करके रख दी जाती थी। उस समय ज्यादातर लोगों में निःस्वार्थता और उदारता भरी होती थी। आँगन में आया हुआ कोई भी आदमी हो या जानवर, भूखा-प्यासा नहीं जाता था। परिचितों या रिश्तेदारों के बीच एक-दुसरे के परिवारों और घरों में स्थायी तौर पर बस जाने का रिवाज़ आम होता था, क्योंकि एकदूसरों के ऊपर विश्वास होता था, छोटामोटा धोखा खाते रहने के बाद भी। आजकल तो लोगों के पास मेहमानों के लिए, और यहाँ तक कि अपने परिवार के लिए भी समय नहीं है। उस समय अपनों से ज्यादा दूसरों को सम्मान व सुविधाएं देने का प्रयास किया जाता था। आज तो परिवार के असली सदस्य को भी यह महसूस नहीं होता कि वह उस परिवार का सदस्य है।

पिछली पोस्टों के अनुसार, कुंडलिनी को मूलाधार चक्र में इसीलिए सोया हुआ कहते हैं, क्योंकि वह वहाँ अनभिव्यक्त होती है, नष्टभूत नहीं। आदमी नींद में अनभिव्यक्त रहता है, नष्टभूत नहीं। वह सुबह होने पर फिर जाग जाता है। जिस चीज का अस्तित्व है, वह कभी नष्ट नहीं हो सकती, केवल अनभिव्यक्त हो सकती है। समय आने पर वह अभिव्यक्त भी जरूर होगी, क्योंकि अनभिव्यक्ति से अभिव्यक्ति के बीच में रूप बदलते रहना प्रकृति का स्वभाव है। चक्र नाम भी ग्रहीय कक्षाओं से पड़ा है, ऐसा लगता है मुझे। जैसे सौरमंडल में ग्रहों की या परमाणु के अंदर इलेक्ट्रोनों की अलगलग गोलाकार कक्षाएं अलगलग ऊर्जा स्तरों को दर्शाती हैं, उसी तरह अलग-अलग कुंडलिनी चक्र भी कुंडलिनी अर्थात मन की अभिव्यक्ति रूपी ऊर्जा के अलगलग स्तरों को दर्शाते हैं। चक्र का मतलब ही पहिए के जैसा गोल घेरा होता है। कुंडलिनी के आगे से पीछे के चक्र को और पीछे से आगे के चक्र को जाते रहने को कुंडलिनी का गोलाकार घेरे में घूमना भी कह सकते हैं। यह ऐसे ही है जैसे इंजन के पिस्टन की आगे-पीछे की गति करैंक शाफ़्ट से जुड़े फ्लाइ व्हील की गोलाकार गति में बदल जाती है।

मैं यह भी बता रहा था कि कैसे हरेक जीव में, यहाँ तक कि घोरतम अन्धकारमय योनियों और अवस्थाओं में भी उसी तरह परमात्मा बसा होता है, जैसे एक छोटे से बीज में विशाल वृक्ष छिपा होता है। बेशक उन अवस्थाओं में परमात्मा सर्वाधिक अव्यक्त या अनभिव्यक्त होता है, पर पूर्णतः नहीं। इसीलिए वैदिक सांख्य दर्शन में घोरतम मूल प्रकृति को अव्यक्त या प्रधान भी कहते हैं। इसे भी परमात्मा की तरह अनादि और अनंत कहा गया है। यही शक्ति या पवित्र भूत है। यहीं से सभी जीवों की आत्मा आती है। इसीलिए तो यदि सभी जीवात्माएं एकसाथ भी मुक्त हो जाएं, तो भी नए जीव पैदा होते ही रहेंगे, क्योंकि उनकी जीवात्माओं का स्रोत मूल प्रकृति तो अविनाशी है। मुक्ति के बाद जीवात्मा फिर कभी भी मूल प्रकृति की तरफ वापिस नहीं लौटता। वह उसकी पकड़ से हमेशा के लिए छूट जाता है, क्योंकि वह परमात्मा से एकाकार हो जाता है। ऐसा शास्त्रों का कहना है। मेरा अपना छोटा सा अनुभव भी यही कहता है। मुझे सपने में केवल दस सेकंड की आत्मज्ञान जैसी अनुभूति की झलक मिली थी। उसने मुझे लम्बे समय तक दुनिया से

अलगथलग सा मतलब अनासक्त बना कर रखा। मुझे पूरी तरह वापिस आने में लगभग दस साल लग गए। तो सोचिए, जब सपने में दस सेकंड के लिए परमात्मा से एकाकार जैसे होने पर (वह भी पूरी तरह से एकाकार नहीं) आदमी दुनिया के चंगुल से छूटने के करीब पहुंच जाता है, तब जो परमात्मा अनादि काल से अपने पूर्ण स्वरूप में स्थित है, वह कैसे इसके चंगुल में फंस सकता है। जीवित अवस्था में ऐसी पूर्ण अवस्था को लाखों में एक-आध लोग ही प्राप्त कर पाते होंगे, आज के भौतिक युग में तो इतने भी नहीं लगते मुझे। कुंडलिनी जागरण और पूर्ण अवस्था में तो जमीन और आसमान का फर्क है। कुंडलिनी जागरण तो सिर्फ एक शुरुवात भर है मुक्तियात्रा की। सबसे पहले जो जीवात्मा बनी, वो कहाँ से आई? यह यक्ष प्रश्न बहुत से लोग उठाते रहते हैं। उपरोक्तानुसार ऐसा भी नहीं कह सकते कि वह परमात्मा से आई। और ऐसा भी नहीं कह सकते कि वह पहले थी ही नहीं, क्योंकि जो पदार्थ असल में है ही नहीं, वह पैदा नहीं हो सकता। कोई भी वस्तु कभी पैदा नहीं हो सकती, और न ही कभी नष्ट हो सकती है, सिर्फ रूप ही बदल सकती है। विज्ञान भी तो इसी भारतीय दर्शन की पुष्टि करता है। विज्ञान में इसे द्रव्यमान और ऊर्जा के संरक्षण का सिद्धांत कहते हैं, अर्थात प्रिंसिपल ऑफ़ मास एनर्जी कंजर्वेशन। मतलब कि जो चीज हमें नष्ट होती हुई सी लगती है, वह नष्ट न होकर पहले दृश्य ऊर्जा में और फिर अदृश्य ऊर्जा या डार्क एनर्जी में रूपांतरित हो जाती है। इसी सिद्धांत से परमाणु बम बना है, जिसकी धमकी रूस बारबार युक्रेन और नाटो के खिलाफ दे रहा है। शून्य का भी अपना अस्तित्व है। इसी शून्य को विज्ञान में काली ऊर्जा अर्थात डार्क एनर्जी कहते हैं। इसलिए यही मानना पड़ेगा कि शून्यरूप मूल प्रकृति से ही पहली जीवात्मा आई। इससे प्रकृति का अनादि और अनंत रूप खुद ही सिद्ध हो जाता है। अद्वैत वेदांत दर्शन के अनुसार तो मूल प्रकृति भी परमात्मा से भिन्न नहीं है। दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं, जैसा मैं पिछली पोस्टों में बता रहा था। अब मैं यह बताता हूँ कि 'पवित्र भूत' यह नाम मूल प्रकृति को क्यों दिया गया है। दरअसल यह परम अव्यक्त है, मतलब कि इसमें सब कुछ पूरी तरह से और बराबर मात्रा में अव्यक्त है। इसलिए यह बच्चे या परमात्मा की तरह निष्पक्ष हुई, जिसके लिए सब कुछ बराबर है। इसीलिए इसे सांख्य दर्शन के अनुसार समगुणावस्था भी कहते हैं। यानि कि इसमें स्थूल प्रकृति के सभी गुण या स्वभाव बराबर मात्रा में हैं, हालांकि अव्यक्त रूप में। मतलब कि अगर इससे कभी कुछ व्यक्त होएगा, तो सब कुछ बराबर मात्रा में होएगा, मतलब पूरी सृष्टि इससे अभिव्यक्त होएगी। सृष्टि में कुल मिलाकर सबकुछ बराबर ही होता है, प्लस और माईनस बराबर होते हैं। है तो यह भूत की तरह अन्धकारमय ही, पर है पवित्र। जबकि साधारण भूत में बुरे काम अव्यक्त रूप में ज्यादा छिपे होते हैं। इसलिए वे दूसरों का नुकसान करते हैं, और व्यक्त होने पर या जन्म लेने पर बुरे कर्म करते हैं। साधारण भूत के अँधेरे में ज्यादातर बुरे काम ही छिपे होते हैं, जबकि पवित्र भूत के अँधेरे में सम्पूर्ण सृष्टि छिपी होती है। हालांकि साधारण भूत के रूप में अच्छे काम भी छिपे हो सकते हैं, पर वे परमात्मा की तरह सम या बराबर या निष्पक्ष या निर्लिप्त नहीं होते। उनका झुकाव किसी विशेष कर्म या प्रवृत्ति की तरफ ज्यादा होता है। इसीलिए कहते हैं कि पवित्र भूत परमात्मा की तरफ ले जाता है। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि दोनों में उपरोक्तानुसार बहुत सी समानताएं हैं। खासकर दोनों परिवर्तनरहित, अद्वैत रूप और अनासक्त हैं। यह पुस्तक शरीरविज्ञान दर्शन में बहुत अच्छे से दिखाया गया है। यही अद्वैत तंत्र है, जो सबसे जल्दी फल देता है। तांत्रिक अद्वैतभाव के साथ पंचमकारों का सेवन करते हैं। इससे वे मूल प्रकृति की तरह अव्यक्त बन जाते हैं। फिर यौनयोग की शक्ति से एकदम से उनकी कुंडलिनी सहस्रार में प्रविष्ट हो जाती है। ऐसा इसलिए, क्योंकि उनके मन में किसी विशेष वस्तु की चाह नहीं थी। यदि ऐसा होता तो उनकी शक्ति उस विशेष वस्तु की अभिव्यक्ति पर अटक जाती, मतलब किसी विशेष चक्र पर अटक जाती। हरेक चक्र विशेष पदार्थों व भावों का प्रतिनिधित्व करता है। जैसे कि मुलाधार चक्र सुरक्षा आदि, मणिपुर चक्र खाद्य आदि, अनाहत चक्र सामाजिक भावनात्मक संबंध आदि, विशुद्धि चक्र वाणी-व्यवहार आदि, आज्ञा चक्र बुद्धि या चतुराई आदि से जुड़े पदार्थों और भावों का प्रतिनिधित्व करता है। सहस्रार चक्र सर्वसमभाव या अद्वैत का प्रतिनिधित्व करता है। इसी वजह से ही विशेष पदार्थ या भाव से जुड़ी आसक्ति के कारण कुंडलिनी उससे संबंधित चक्र पर अटक जाती है। जिस तरह मन से उस आसक्ति को नष्ट करके उससे संबंधित चक्र खुल जाता है, और कुंडलिनी को आगे निकलने का रास्ता दे देता है, उसी तरह हठयोग क्रियाओं से उस संबंधित चक्र को खोलने से उससे जुड़ी आसक्ति खुद ही नष्ट हो जाती है। इस तरह से अद्वैत साधना और कुंडलिनी योग साधना एकदूसरे की अनुपूरक हैं। मैं एक पुस्तक में पढ़ रहा था कि एक आदमी अपने शरीर की मालिश करके अपने चक्रौं को अर्थात मन की गांठों को खोल रहा था। वह हड्डी तक को छूती हुई गहरी तेल की मालिश करता था। दरअसल मन की आसक्तियाँ या गांठें चक्रौं से होते हुए शरीर के विभिन्न हिस्सों में जमा हो जाती हैं। जब मालिश से उन्हें खोला जाता है, तो चक्र भी खुल जाते हैं, क्योंकि वे चक्रौं से जुड़ी होती हैं।

ऐसा ही भारी व्यायाम जैसे कि कठिन परिश्रम या कार्डीएक या साईकलिंग से भी होता है। ऐसा ही कुंडलिनी योग से भी सबसे अच्छे और वैज्ञानिक तरीके से होता है। पूरे शरीर के आसनों से चक्रों की मालिश तो होती ही है, साथ में सभी सुदूरस्थ नसों और नाड़ियों की मालिश भी हो जाती है, जिससे उनमें फँसी आसक्ति की गांठें खुल जाती हैं। मूल प्रकृति के उपरोक्त वर्णन से प्रथमदृष्टया साफ दिख रहा है कि मूल प्रकृति या मूल शक्ति से ज्यादा साधारण, व्यावहारिक, व्याख्यात्मक, जानदार और सारगर्भित शब्द पवित्र भूत या पवित्र आत्मा प्रतीत होता है।

सांख्य दर्शन में दो शाश्वत तत्त्व हैं, प्रकृति और पुरुष। इनके संयोग से जीव बनता है, जैसे वह रज और शुक्र के संयोग से बनता है। इसमें अंधकारमय या रज या यिन या जड़ भाग प्रकृति है, और प्रकाश या शुक्र या यांग या चेतन भाग पुरुष है। सभी जीवों को पुरुष इस जुड़े हुए रूप में ही महसूस होता है, शुद्ध या बिना जुड़े या मूलरूप में नहीं। मतलब उसने कभी मूल प्रकृति को तो शुद्ध रूप में अनुभव किया था, क्योंकि कभी उसने अपनी जीवनयात्रा वहीं से शुरु की थी। उस समय पुरषोत्तम रूपी परमात्मा से उसमें पुरुष रूपी बीज पड़ा था। इसीलिए परमात्मा को वीर्यबीज डालने वाला पिता और प्रकृति को सृष्टि की योनिरूप माता कहा गया है। पर एकबार जीवनयात्रा को शुरु करने के बाद वह शुद्ध मूल प्रकृति को कभी अनुभव नहीं कर पाया, क्योंकि फिर हमेशा उसमें पुरुष का अंश विद्यमान रहा, कभी कम तो कभी ज्यादा। शुद्ध पुरुष को उसने कभी भी महसूस किया ही नहीं था। उसको महसूस करके ही जीव की मुक्ति की शुरुआत होती है। कुंडलिनी रूपी पुरुष को शुद्ध रूप में अनुभव करने के लिए किए जाने वाले अभ्यास का नाम ही कुंडलिनी योग है। अभ्यास करते हुए एक समय ऐसा आता है जब कुंडलिनी का ध्यान इतना प्रगाढ़ हो जाता है कि आदमी अपने आप को कुंडलिनी के साथ पूरी तरह एकाकार महसूस करता है, अतीव आनंद व अद्वैत के साथ। यही समाधि है। यही कुंडलिनी जागरण है। यही शुद्ध पुरुष का अनुभव है। यही प्रकृति पुरुष का विवेक है। इसे विवेकख्याति भी कहते हैं। मतलब कि प्रकृति और पुरुष के बीच का अंतर और उनका गठजोड़ अच्छे से समझ आ जाता है। ऐसा इसलिए है क्योंकि कुंडलिनीजागरण के अतिरिक्त आदमी का हरेक अनुभव प्रकृति और पुरुष के मिश्रण से बना होता है। आदमी का अपना रूप प्रकृति होता है, और अनुभव का रूप पुरुष होता है। इसीलिए उन अनुभवों में द्वैत भाव होता है, मतलब आदमी को अनुभव के साथ अपनी एकता महसूस नहीं होती। उसे लगता है कि वह एक दर्शक की तरह अपने से अलग अनुभव दृश्यों को अनुभव कर रहा है। पर कुंडलिनी जागरण के समय आदमी को अनुभव का रूप अपना ही रूप लगता है, अपने से जरा भी अलग नहीं, मतलब पूर्ण अद्वैत भाव होता है। उसे लगता है कि वह बेशक दर्शक है, पर दृश्य अनुभव से अलग नहीं, और अपने को ही दृश्य अनुभव के रूप में महसूस कर रहा है। इसका मतलब हुआ कि आदमी ने शुद्ध पुरुष अर्थात आत्मा का अनुभव किया। खैर ये तो थ्योरेटीकल बातें हैं, जो सांख्य दर्शन का निर्माण करती हैं। इसका प्रेक्टिकल रूप तो समाधि का अनुभव है, जो योगदर्शन का निर्माण करता है। योग सांख्य दर्शन को वैज्ञानिक प्रयोग से प्रमाणित करता है।

फिर मैं कह रहा था कि रूपक या रहस्यात्मक रूप में जो बात कही जाती है वह स्पष्ट बात से कहीं ज्यादा प्रभावशाली होती है, क्योंकि वह सीधे अवचेतन मन में बैठकर संस्कार बन जाती है। इसलिए मैं कभी नहीं चाहता था कि हिन्दु शास्त्रों और पुराणों का वैज्ञानिक रहस्योदघाटन करूँ। पर जब मैंने देखा कि तथाकथित छद्म हिन्दू या धर्मनिरपेक्षतावादी या आधुनिकतावादी, और अन्य हिन्दुविरोधी मानसिकता वाले लोग लगातार दुष्प्रचार करते हुए हिंदु धर्म को नष्ट करने पर ही उतारू हो गए हैं, तब मुझे ऐसा करना पड़ा। यह विशेषतः उन्हीं का मुँह बंद करने के लिए है। ऐसा तभी होगा, जब वे हिन्दु दर्शन के विज्ञान को समझकर उससे लाभ उठाएंगे। यदि अच्छी भावना के साथ उनका रहस्योद्घाटन न किया जाए तो हिन्दुविरोधी लोग बुरी भावना के साथ उनका रहस्य उजागर करेंगे, या झूठा रहस्योद्घाटन करेंगे। जैसे आजकल ज्ञानवापी मस्जिद में मिले शिवलिंग के बारे में किया जा रहा है। वैसे दरअसल न तो मैंने ऐसा कभी सोचा और न ही कुछ ऐसा किया। सब कुछ खुद ही होता गया जरूरत के अनुसार। यह मैं प्रकृति की सोच और उसके कर्म को दर्शा रहा हूँ। इसलिए इसे मेरा नहीं, प्रकृति का योगदान समझा जाए तो ही उचित है। अगर कोई मुझे पढ़ने के लिए देगा, तो मैं तो उसी रहस्यात्मक मूलरूप को पढ़ना पसंद करूंगा। इसी तरह किसी की अच्छी रचना को पढ़ना हो या उसे पसंद करना हो, तो उसमें मुख्यतः माँ शक्ति का योगदान देखना चाहिए, रचनाकार का नहीं। कई लोग अच्छी रचनाओं को इसलिए नहीं पढ़ते या इसलिए पसंद नहीं करते, क्योंकि वे उसे केवल रचनाकार की कृति मानते हैं, और कई बार तो उनका रचनाकार के प्रति पूर्वाग्रह भी होता है। यदि वे रचना को प्रकृति माता की कृति मानें, तो वे भी उस रचना से लाभ उठा सकते हैं, और रचनाकार का हौंसला भी बढ़ा सकते हैं।

मैं यह नहीं कह रहा कि आदमी हर किसी रचना पर ध्यान दे। पर यदि असल में उसे रचना अच्छी लग रही है, तो उसे मन मसोस कर नहीं रहना चाहिए, रचना से पूरा लाभ उठाना चाहिए। इससे रचनाकार को भी अच्छा लगेगा। आजकल मैं फेसबुक और व्हाट्सएप पर ऐसी गुटबंदी अक्सर देखता हूँ जब लोग रचना को न देखकर उस गुट को या व्यक्ति को देखते हैं, जहाँ से साहित्यिक आदि रचना आई है। अपने गुट या बड़बोले आदमी से आई छींक पर भी ढेर सारी प्रतिक्रियाएं मिलती हैं, जबकि अगर विरोधी गुट का आदमी या ज्यादातर शांत-मौन रहने वाला व्यक्ति जन्नत से महफ़िल भी उतार दे, तब भी कोई प्रतिक्रिया नहीं मिलती, बेशक मन में लड्डू फूट रहे हों। यह अलग बात है कि असली लेखक प्रतिक्रिया से अपेक्षा नहीं रखता, पर सच्ची प्रतिक्रिया से पाठक को ही अतिरिक्त लाभ मिलता है। ऋषियों-फकीरों ने बहुत पहले ही आदमी की इस कमी को भांप लिया था, इसलिए उन्होंने युगों पहले ही इस बारे यह दोहा बनाकर चेता दिया था, "मोल करो तलवार का, पड़ी रहने दो म्यान"। आदमी को नीरक्षीर ग्राही होना चाहिए। जैसे हँस पानी मिले दूध में से केवल दूध ही पीता है, इसी तरह आदमी को भी अच्छी चीज हर जगह से ग्रहण कर लेनी चाहिए। कई लोग स्वार्थवश रचना को पढ़ते हैं। कइयों का मकसद समाज में अपना दबदबा कायम करना होता है। कई लोग इसलिए किसीकी रचना पढ़ते हैं, ताकि बदले में वह भी उनकी रचनाएं पढ़े। मुझे तो वैसे पाठक सबसे अच्छे लगते हैं जो निस्वार्थ भाव से रचना का आकलन करते हैं। वैसे भी मुझे लेखकों से अच्छे पाठक लगते हैं। लेखक में अहंकार पैदा हो सकता है, पर पाठक में नहीं। इसीलिए रचना का लाभ लेखक से ज्यादा पाठक को मिलता है। रचना को पढ़ने और पसंद करने से पाठक को भी उत्कृष्ट रचना बनाने की प्रेरणा मिलती है। मैं बहुत सी उत्कृष्ट किताबें, कविताएं पढ़ा करता था, और उन्हें पसंद भी करा करता था। इससे क्या हुआ कि मुझे भी रचना निर्माण की शक्ति मिलती रही, जिससे मेरी रचनाओं में निरंतर सुधार होता रहा। अब मैं अपने पाठकों में बहुत से भावी उत्कृष्ट रचनाकार देखता हूँ। यह परम्परा निरंतर चलती रहती है, और समाज जागृति की ओर कदम दर कदम बढ़ता रहता है।

इसी तरह पिछले लेख में बात चली थी कि बेशक योग के दौरान कुंडलिनी चित्र का ध्यान किया जा रहा हो, पर असल में वह उस चित्र या प्रतिबिम्ब का या उसको बनाने वाले बिम्ब का नहीं होता, बल्कि साधक द्वारा अपने रूप का ध्यान हो रहा होता है। किसी के मन के जो भी चित्र या भाव हैं, वे सब मिलकर उस आदमी का अपना रूप या मन बनाते हैं। कुंडलिनी चित्र को नियमित ध्यान से सबसे मज़बूत बनाया जाता है, ताकि वह पूरे मन का नेता बन सके। भीड़ को नेता के माध्यम से ही नियंत्रित किया जा सकता है, सीधे तौर पर नहीं। मन को आप एक दरी समझ लो। विचारों और भावों को आप उस पर चिपकी धूल समझ लो। डंडे को आप कुंडलिनी चित्र समझ लो। डंडे से दरी को जोरजोर से पीटने को आप कुंडलिनी ध्यानयोग समझ लो। उससे जो धूल के कण बाहर झड़ते हैं, उन्हें आप मन में दबे हुए चेतन और अवचेतन किस्म के विचार और भाव समझ लो। बहुत गहराई से चिपके कणों को अवचेतन किस्म के विचार समझ लो। ऊपर-ऊपर से हल्के तौर पर चिपके कणों को चेतन किस्म के सतही विचार समझ लो। धूल के कण पहले बाहर निकलते हुए दिखते हैं, फिर खुले वायुमंडल में विलीन हो जाते हैं। इसी तरह मन के दबे विचार पहले महसूस होते हैं, फिर ऐसा लगता है कि कहीं शून्य में विलीन हो गए। आसपास में जैसे अधिक गति से वायु के चलने से धूल के कण ज्यादा मात्रा में बाहर निकलकर खुले गगन में गायब हो जाते हैं, उसी तरह लम्बी और गहरी साँसें लेने से मन के दबे विचार ज्यादा मात्रा में बाहर निकलकर आत्मा रूपी खुले आकाश में विलीन हो जाते हैं। यही साक्षीभाव या विपासना है। इस तरह से आत्मा की सफाई होती जाती है, और वह निर्मल से निर्मल होती रहती है। इसीको आत्मा का ध्यान कहा है, कुंडलिनी की सहायता से। जैसे मध्यम, एकसार व एक दिशा में चलने वाली हवा की गति से दरी के धूलकण ज्यादा अच्छी तरह से बाहर निकलकर गायब हो जाते हैं, वैसे ही इसी तरह की सांसों से मन के विचार ज्यादा अच्छी तरह से गायब होते हैं। जैसे हल्की हवा चलने से धूलकण दुबारा दरी पर बैठ जाते हैं, उसी तरह ठीक से सांस न लेने पर विचारों का कचरा पुनः मन पर बैठ जाता है। जैसे दरी को झाड़ने के बाद डंडे को हटा देते हैं, उसी तरह मन के पूरी तरह से साफ होने के बाद कुंडलिनी चित्र भी खुद ही गायब होने लगता है। यह अलग बात है कि नियमित योगसाधना से उसे हमेशा जिंदा रखा जाता है, ताकि मन पर लगातार जमने वाली विचारों की धूल साफ होती रहे। यह ऐसे ही है जैसे प्रतिदिन सुबह-शाम डंडे से दरी को झाड़ा जाता रहता है, और दिन में डंडे को साइड में रखा जाता है। पवित्र कुंडलिनी चित्र पिछली पोस्ट में दर्शाया गया वही फरिश्ता है, जिसे इस्लाम में सच्चा मुसलमान माना जाता है। अन्य मानसिक चित्र काफ़िर जिन्न भी हो सकते हैं, जो अल्लाह से दूर ले जाते हैं।

पिछले लेख में यह बात भी चली थी कि कुंडलिनी को एकदम से मूलाधार से सहस्रार को उठाने के लिए लोग सम्भोग की ओर आकर्षित होते हैं। पर वे उसके लिए पर्याप्त समय व शक्ति नहीं दे पाते, जिससे लाभ कम और कई बार तो नुकसान भी हो जाता है, जैसे वीर्यशक्ति का बहिर्गमन, अनचाहा गर्भ, यौन संक्रमण या प्रॉस्टेट आदि की समस्या। सम्भोग जीवन का सबसे सुखद और निर्णायक काम है। उसके लिए रात्रि का वह बचा-खुचा समय रखा गया है, जिस समय उसमें किसी भी कार्य को करने की शक्ति नहीं बची रहती, और जिस समय आदमी बेहोशी जैसी अवस्था में होता है। यह तो सम्भोग की दिव्यता है कि यह उस हालत में भी आदमी को तरोताज़ा कर देने का पर्याप्त प्रयास करता है। तब सोचो कि पहले से ही तरोताज़ा होने पर यह कितनी ज्यादा दिव्यता और कुंडलिनी शक्ति देता होगा। शास्त्रों में भी इसका वर्णन है। एक ऋषि ने एकबार अपनी कामातुर पत्नि के साथ संध्या के समय सम्भोग किया था, जिससे उसके गर्भ से दो भयानक व शक्तिशाली राक्षसों का जन्म हुआ था। यह उसी सम्भोग शक्ति से हुआ था। यह अलग बात है कि किसी वजह से वे सम्भोग शक्ति को कुंडलिनी देव को नहीं दे पाए, जिससे वह खुद ही उसके विपरीत स्वभाव वाले राक्षस को मिली। अगर कुंडलिनी देव को वह शक्ति मिलती तो सम्भवतः दो देवों का जन्म होता। मतलब कि उन्होंने सम्भोग को यौनयोग की तरह नहीं किया। सम्भवतः इसीलिए शास्त्रों में गैरवक्त में सम्भोग को वर्जित किया गया है। इतना तो इससे प्रमाणित हो ही गया है कि दिन के समय किए सम्भोग में बहुत शक्ति होती है। जिस शक्ति से राक्षस पैदा हो सकता है, उससे देवता भी पैदा हो सकता है। राक्षस सम्भवतः रूपक की तरह आसक्ति से भरी दुनियादारी को कहा गया है। देवता अर्थात कुंडलिनी फिर अनासक्ति व अद्वैत से भरी दुनियादारी हुई। आप इड़ा और पिंगला को दो राक्षस कह सकते हैं। सुषुम्ना चैनल को एकल देवता माना जा सकता है। यदि इड़ा और पिंगला की शक्ति आसक्तिपूर्ण सांसारिक भोगों के बजाय सुषुम्ना को हस्तांतरित कर दी जाए तो इड़ा और पिंगला को भी दो देवता कहा जा सकता है। इस तरह समाज के द्वारा सम्भोग को नजरन्दाज करने का मतलब है कि इसको सबसे फालतू और गैरज़रूरी काम माना गया है, जबकि सच्चाई यह है कि जीवन की सभी तरक्कियों और मुक्ति का रास्ता इसीसे होकर जाता है। दुनियादारी के बंधनों के लिए अच्छे से अच्छे समय चिन्हित किए जाते हैं, और इस शक्तिजागरण पैदा करने वाली क्रिया के लिए वह समय दिया जाता है, जब आदमी हर जगह से थकहार कर बैठ जाता है। मेरा एक हमउम्र जैसा गांव का चाचा बता रहा था कि वह जब एकबार जंगल के बीच बने रास्ते से गुजर रहा था, तो उस रास्ते के ऊपर कुछ स्थानीय महिलाएं पशुओं के लिए घास काट रही थीं। उनमें से एक महिला बाकियों को सुना रही थी कि एक तो पूरे दिनभर काम करके थक कर घर जाएं और ऊपर से वे रात को बेलन जैसे सरका दें। सभी भुक्तभोगी साथी महिलाओं ने उसकी दुख भरी दास्तान का अनुमोदन किया। अजीब विडंबना है। नारी जाति का कितना बड़ा अपमान है यह, और उसे इसे इस बात की भनक नहीं। उल्टा महिला अधिकार वाले केस कर दें ऐसी तथ्यपूर्ण बातों को लेकर। मेरा एक यूएसए का ब्लॉग मित्र भी यही अनुभवसिद्ध बात कर रहा था कि एक बार में ही लगातार काफी देर तक वीर्यनिरोधक सम्भोग करते हुए ही एक ऐसा थरेशहोल्ड या सीमाबिंदु आता है, जब मूलाधार की कुंडलिनी ऊर्जा पीठ से ऊपर चढ़ती हुई पूरे शरीर को तरोताज़ा और जागरण की ओर रूपांतरित करने लगती है। हालांकि कई बार यह ऊपर की ओर चढ़ने वाली और रूपान्तरण करने वाली ऊर्जा उस समय महसूस नहीं होती, पर एक-दो दिन बाद महसूस होने लगती है, विशेषकर कुंडलिनी योग के साथ। दरअसल यह सीधी सम्भोग की ऊर्जा नहीं होती, जैसी कि आम आदमी गलतफहमी से सोचते हैं, पर उसके रूपान्तरण से बनी आध्यात्मिक या कुंडलिनी ऊर्जा होती है। इसलिए इसके लिए हम आम बोलचाल का सम्भोग शब्द भी इस्तेमाल नहीं कर सकते। यौनयोग ज्यादा उपयुक्त शब्द लगता है। ऐसा समझ लो कि इसके लिए सभी कामधंधे छोड़कर पूर्णतः एकांत में (यहाँ तक कि इसकी कभी किसीको कानोंकान खबर न लगे, क्योंकि यौनकुंठित लोगों की इस पर बड़ी बुरी नजर लगती है, वैसे भी इसे सामाजिक नहीं कहा जा सकता, इसीलिए इसको गुह्य या गुप्त विद्या कहते हैं), बिना किसी विघ्न या व्यवधान के, समर्पित किए गए दिन के प्रातःकालीन या अन्य समय की तरोताज़ा तन-मन की अवस्था में 3-4 घंटे काफी है, इस जागरण-प्रारम्भ के लिए जरूरी सीमाबिंदु को प्राप्त करने के लिए। किसी के पास शक्ति और समय हो तो बीच-बीच में नींद की झपकियां लेते हुए जितने लम्बे समय तक चाहे कर सकता है। दुनिया में प्रेम और सुख से ज्यादा जरूरी भला क्या कामधंधा हो सकता है। पर ऐसी बातें किसीको बताना नहीं मांगता। सेक्स-कुंठित समाज में सेक्स की बात

करने वाला व्यक्ति हंसी का पात्र बनता है। हाहाहा। । लगता है इसी यौन कुंठा के कारण ही लोगों को पर्याप्त यौन संतुष्टि नहीं मिल रही है, जिससे समाज में महिला उत्पीड़न, व्यभिचार और बलात्कार के मामले बढ़ रहे हैं। मुझे तो लगता है कि समाज के सभी झगड़ों और समस्याओं के मूल में यही कारण है। वैसे भी बीच-2 में कुंडलिनी को यौन

योग से पुनारवेशित या रिचार्ज करते रहना पड़ता है, नहीं तो यह उबाऊ या अल्प प्रभावी सा लगने लगता है। ओशो महाराज ठीक कहते थे कि सम्भोग के बारे में कभी पर्याप्त शोध हुए ही नहीं हैँ। समाज आज के तथाकथित आधुनिक युग में भी इतना उन्मुक्त नहीं हुआ है कि कोई कह दे कि वह कुछ दिनों के सम्भोग के लिए भ्रमण या आऊटिंग पर जा रहा है या काम से छुट्टी ले रहा है। आजकल तो कर्मोन्माद है हर जगह। काम, काम और बस काम। सम्भोग को तो केवल संतान पैदा करने वाली मशीनी कार्यवाही भर मान लिया गया है, लगता है। साथ में इसको फालतू और सबसे ओछे काम की तरह मान लिया गया है। परिणाम, जनसंख्या विस्फोट। ऐसी मानसिकता के साथ किए सम्भोग से जो जनसंख्या बनेगी, उसकी गुणवत्ता पर भी प्रश्नचिन्ह तो लगेगा ही। व्यक्तिगत जीवन और मुक्तिपथ का बोध ही नहीं है। इसी अंधे कर्मोन्माद से ही तो दुर्घटनाएं और युद्ध हो रहे हैं, जिनसे आम बेगुनाह लोग मारे जा रहे हैं। रूस-यूक्रेन युद्ध को ही देख लो। क्या इसी के लिए दिनरात जीतोड़ मेहनत करके इतना विकास किया था। जिस अंधे काम से सदबुद्धि ही नष्ट हो जाए, उस काम से क्या लाभ। अभी चार-पांच दिन पहले दिल्ली के अवैध कारखाने में आग लगने से बीस से ज्यादा लोग जल कर मर गए और इतने ही लोग लापता हो गए। माना कि प्रशासन की लापरवाही है, पर आम जनता की भी कम नहीं है। हालांकि मासूम लोग ग़रीबी और घनी जनसंख्या से मजबूर हैं खतरे के नीचे जीवनबसर करने के लिए। सबसे ज्यादा दोषी तो वे बड़े लोग हैं, जो ज्यादा मुनाफे के लिए ऐसा अवैध काम कर रहे हैं। एक नवयुवती बालिका की चीखें यह कहते हुए कि अगर उसकी लापता बहिन नहीं मिली तो वह अपनी माँ और अन्य बहन के साथ सामूहिक आत्महत्या कर लेगी, दिल को चीर देती है। पहले भी ऐसी घटनाएं बहुत हुई हैं, पर उनसे ठीक सबक नहीं लिया, ऐसा लगता है। बस विकास, विकास और विकास। अगर जनसंख्या को नियंत्रित नहीं किया तो चाहे जितना मर्जी विकास कर लो, सब थोड़ा पड़ जाएगा। विकास भी ऐसा कि आजादी को मिले सत्तर साल से ज्यादा समय हो गया, पर बच्चों के स्कूल बैग का वजन घटने की बजाय बढ़ रहा है। एक दिन में अपने बेटे का स्कूल बैग पीठ पर लेकर उसको बाईक पर स्कूल छोड़ने गया। बैग इतना भारी लगा मुझे कि मेरे से संतुलन बिगड़ गया, और जैसे ही बाईक रोकी, वैसे ही बाईक के साथ हम दोनों एक तरफ को गिर गए। बेटे ने बैग पकड़ा हुआ था, इसलिए वह भी उसके साथ एकतरफ को झूल गया। संतुलन से संबंधित ज्यादातर बाईक की दुर्घटनाएं पीछे बैठने वाले के कारण होती हैं, इसलिए उसे ही पीछे बैठाएं, जिसे बाईक पर बैठना आता हो, या बैठना सिखा दें। हालांकि वहाँ जमीन भी समतल न होते हुए थोड़ी तिरछी थी। दरअसल आजकल के आधुनिक मोटरसाइकलों में न्यूट्रल गियर दूसरे और पहले गियर के बीच में आता है, इससे धोखा लगता है। मैंने डॉउनशिफ्ट किया तो जीरो गियर लग गया। इससे बाईक ने रेस नहीं ली। इससे संतुलन बिगड़ गया। गनीमत यह रही कि चोट नहीं लगी और एक स्कूल बस पर्याप्त दूरी पर चल रही थी बहुत धीरे से, क्योंकि वहाँ मोड़ था और ट्रेफिक का रश था। हालांकि उसने मौके को भाम्पते हुए पहले ही बस रोक दी थी। स्कूल वालों को बच्चों की किताबें स्कूल में ही रखवाई रखनी चाहिए। यहाँ ट्रेफिक नियमों की अनदेखी भी अक्सर होती रहती है। मेरी पत्नि की एक मित्र की मित्र जो विदेश में भी जाके रहती है कह रही थी कि यहाँ की ड्राइविंग तो बड़ी विचित्र और क्रन्तिकारी या जानलेवा जैसी है। पर मुझे तो लगता है कि यहाँ के ड्राइवर बड़े सेंसिबल हैं, इसीलिए तो मूलभूत सुविधाओं के अभाव में और इतनी ज्यादा जनसंख्या होने के बावजूद भी अपेक्षाकृत कम सड़क दुर्घटनाएं होती हैं। फिर भी यहाँ रोड पर चलने वाले को काफ़ी अतिरिक्त सावधानी बरतनी पड़ती है। भगवान बचाए। ऐसा ही विकास काशी विश्वनाथ मंदिर में हुआ सत्तर सालों में। आज भी वहाँ मुस्लिम आक्रमणकारियों के द्वारा जो मंदिर गिराकर मस्जिद बनाई गई, उसका शिवलिंग उस मस्जिद के वजूखाने तलाब में एक सर्वे के द्वारा मिलना बताया जा रहा है। अयोध्या को तो अपना राम मंदिर वापिस मिल गया, पर उन हजारों मंदिरों का क्या होगा जिनको तोड़कर मस्जिदें बनाई गईं। क़ुतुब मीनार में भी बहुत से मंदिरों के साक्ष्य मिले हैं। जिस ताजमहल को दुनिया के अजूबों में जगह मिली है, वह भी तेजोमहालय नाम का शिव मंदिर था, जिसकी पुष्टि बहुत से ऐतिहासिक साक्ष्य करते हुए बताए जा रहे हैं। मथुरा के मुख्य श्रीकृष्ण मंदिर की भी यही कहानी है।

कुंडलिनी योग से मृत्यु, प्रलय, जन्म और सृष्टि का रहस्योद्घाटन

दोस्तों! आध्यात्मिक शास्त्र उच्च कोटि के ज्ञान से भरे पड़े हैं। अगर उनके साथ अनुभव का तड़का भी लग जाए तो बात कुछ और ही हो जाती है। यह बात ध्यान देने योग्य है कि हम सभी दुनियादारी में उलझे हुए आदमी हैं। हमारा अनुभव इतना शक्तिशाली नहीं हो सकता कि वह स्वतंत्र रूप से पारलौकिक तथ्यों को सिद्ध कर सके। हां, अगर हमारा अनुभव शास्त्रों के प्रामाणिक तथ्यों जैसा है, तब हमारा अनुभव प्रामाणिक माना जा सकता है। मैं भी अपने ऐसे ही एक छोटे से अनुभव को इस पोस्ट के अंत में साझा करूंगा।

शास्त्रों में प्रलय-काल की प्रकृति को साम्यावस्था की स्थिति के तौर पर बताया गया है। मतलब इसमें इसके तीनों गुण अपने-अपने एक समान स्तर पर बने रहते हैं। बदलते नहीं हैं।ऐसा जरूरी नहीं कि जितना सतोगुण है, उतना ही रजोगुण है और उतना ही तमोगुण है। बल्कि इसका यह मतलब है कि बेशक सब की भिन्न-भिन्न मात्रा है पर हरेक गुण अपनी विशिष्ट मात्रा पर एक समान बना रहता है। वह कम या ज्यादा नहीं होता। उदाहरण के तौर पर अगर सतोगुण का अनुपात 1 है तो एक ही रहेगा। तमोगुण का 5 है तो 5 ही रहेगा और रजोगुण का तीन है तो तीन ही रहेगा। अगर तीनों गुण एकदूसरे के बराबर हुआ करते तो विभिन्न सृष्टियों में विभिन्नता न हुआ करती, बल्कि सभी सृष्टियां बिल्कुल एक समान हुआ करतीं। इसी के साथ, सभी आदमी भी एक जैसे हुआ करते, उनमें भी कोई विभिन्नता न हुआ करती। और तो और, फिर तो सभी दिवंगत आत्माएं भी एकजैसी हुआ करतीं। पर ऐसा तो संभव नहीं है, क्योंकि सृष्टि में विभिन्नता हरेक स्तर पर दिखाई देती है। कुछ आत्माएं पवित्र होती हैं, जो हर तरह से भला करती हैं। पर कुछ आत्माएं पापपूर्ण भी होती हैं, जो नुकसान करने से जरा भी नहीं हिचकतीं। बेशक शरीर न होने के कारण दिवंगत आत्माएं जानबूझ कर भला या बुरा नहीं कर सकतीं, पर उनके सकारात्मक या नकारात्मक ऊर्जा क्षेत्र से खुद ही भला या बुरा होता है। शायद इसे ही शास्त्रों में प्रेत योनि कहा है। मतलब है तो यह दिवंगत और शरीररहित आत्मा ही, पर बहुत लंबे समय तक इसे शरीर न मिलने के कारण इसे मनुष्य योनि की तरह ही एक स्थायी योनि मान लिया गया हो। बेशक यह सूक्ष्म योनि है। उदाहरण के लिए, कई भयानक सड़क दुर्घटना के स्थानों पर बारबार दुर्घटनाएं होती रहती हैं। इसके लिए वहां भटकी हुई या बिना गति लगी हुई या बिना स्थूल योनि को प्राप्त हुई बुरी प्रेतात्मा को जिम्मेदार मानकर वहां भगवान हनुमान आदि देवता के मंदिर या मूर्ति को प्रतिष्ठित किया जाता है। कहते हैं कि उससे दुर्घटनाओं का सिलसिला रुक जाता है। शायद देवता से पैदा सकारात्मक ऊर्जा बुरी प्रेतात्मा की नकारात्मक ऊर्जा को निष्प्रभावी कर देती है। शायद बहुत उच्च कोटि की सकारात्मक ऊर्जा को ही देव योनि कहा जाता हो।

दोबारा सृष्टि-निर्माण से कुछ नहीं बदलता। सिर्फ प्रकृति में पहले से विद्यमान गुणों में क्षोभ पैदा होता है। मतलब कभी सतोगुण अपने आधारभूत स्तर से एकदम से बढ़ जाता है, तो कभी तमोगुण तो कभी रजोगुण। इस तरह से हर-एक गुण का स्तर लगातार बदलता रहता है। जो आदमी ज्यादा क्रियाशील है, उसमें ज्यादा जल्दी से बदलता रहता है। जो कम क्रियाशील है, उसमें कम रफ्तार से बदलता रहता है। आप सोचेंगे कि मैं यहां प्रकृति से आदमी के ऊपर क्यों आ गया। वास्तव में प्रकृति का अनुमान आदमी से ही लगाया गया है। सीधे तौर पर तो कोई भी समष्टि मतलब सर्वव्यापक प्रकृति को अनुभव नहीं कर सकता है। पर व्यष्टि अर्थात सीमित प्रकृति के रूप में स्थित आदमी के जन्म-मरण को जरूर अनुभव किया जा सकता है। योगियों ने इसे अनुभव किया है, जिसके आधार पर ही भारतीय दर्शन और शास्त्र बने हैं।

मरने के बाद आदमी के तीनों गुण अपने-अपने औसत स्तर पर आ जाते हैं और फिर बदलते नहीं। गुणों में क्षोभ पैदा करने के लिए शरीर चाहिए। वह मरने के बाद होता नहीं। जीवित अवस्था में मन के सुंदर विचारों से सतोगुण बढ़ता है। मन की ज्यादा क्रियाशीलता से रजोगुण बढ़ता है, और अकेलेपन या अवसाद जैसी अवस्था में तमोगुण बढ़ता है। ये सारे गुण रहते तो मरने के बाद भी हैं, पर बदलते नहीं हैं। मतलब आदमी कभी नहीं मरता। हमें आदमी मरा हुआ इसलिए लगता है क्योंकि हम गुणों के तूफान में उलझे होते हैं। इससे हमें गुणों की सूक्ष्म अवस्था नजर नहीं आती। यह ऐसे ही है, जैसे चकाचौंध रोशनी के बाद सामान्य अंधेरा भी घुप्प अंधेरा लगता है। हां, जब कुंडलिनी योग से गुणों का तूफान कुछ शांत हो जाता है, तब दिवंगत आत्मा से साक्षात्कार की संभावना बढ़ जाती है। अब आप पूछेंगे कि मरने के बाद गुणों की वह आधारभूत अवस्था कैसे निर्धारित होती है। वास्तव में वह आदमी के पिछले सभी जन्मों के गुणों का औसत होती है। मतलब अगर कोई ज्यादा सतोगुण में रहा है तो आधारभूत सत्त्वगुण ज्यादा रहता है। क्योंकि

सतोगुण पुण्य कर्म से बनता है, मतलब उसमें उसके सभी अच्छे कर्मों का लेखा जोखा भी सूक्ष्म रूप में विद्यमान होता है। जिसके रजोगुण का औसत ज्यादा होगा, उसके कर्म उद्यमशीलता और व्यापार आदि के ज्यादा रहेंगे। ज्यादा तमोगुण का मतलब ज्यादा पाप कर्मों का संचय। मतलब कि गुणों के रूप में सभी कर्म अपनी आधारभूत अवस्था में रहते हैं। हो सकता है कि यह व्यवस्था इतनी निपुण हो कि औसत की बजाय हर एक कर्म अलग-अलग गुण के रूप में पृथक रूप में मौजूद हो। इसकी और शास्त्र यह इशारा करते हुए लिखते हैं कि हर-एक कर्म का फल उस कर्म के अनुसार मिलकर ही रहता है।

खैर मुझे जो पवित्र दिवंगत आत्मा का अनुभव हुआ था, उसमें तो मुझे गुणों की समान और औसत अवस्था ही महसूस हुई थी। मतलब कि आत्मा एक अंधेरे आकाश की तरह महसूस हो रही थी। पर उसमें उस आदमी का पूरा व्यक्तित्व नजर आ रहा था, जिस आदमी की वह दिवंगत आत्मा थी। मतलब वह मुझे मरा हुआ ही नहीं लग रहा था, बल्कि जीवित से भी ज्यादा जीवित लग रहा था। वह व्यक्ति जीवित अवस्था से भी ज्यादा नजर आ रहा था। मतलब उस आत्मा में उसके पिछले जन्मों की छाप भी थी। मतलब वह प्रलय-काल की साम्य-अवस्था वाली प्रकृति ही थी, जिसमें कोई क्षोभ पैदा नहीं हो रहा था। इस आत्मा के अनुभव का वर्णन मैंने इस ब्लॉग की कुछ पुरानी पोस्टों में विस्तार से किया है। अब आप ही बताओ कि समुद्र के निश्चल जल में और उसी जल की लहरों में क्या अंतर है, कुछ भी नहीं? इसी तरह से शरीर-स्थित आत्मा में और दिवंगत आत्मा में भी कोई अंतर नहीं है। जब गुणों और कर्मों के संयोग से उस दिवंगत आत्मा को पुनः नया शरीर मिलता है, तो फिर से उसके गुणों में क्षोभ शुरु हो जाता है, जिसे हम पुनः नई सृष्टि का आरंभ कहते हैं।

मुझे लगता है कि किसी आत्मा के साक्षत्कार के लिए उस आत्मा की इच्छा भी होनी चाहिए मिलने की और उस मिलन को कुछ निर्णायिक क्षणों तक झेलने के लिए और आत्मा से बात करने के लिए आदमी में पर्याप्त मानसिक शक्ति भी होनी चाहिए। यह एग्रेसिव तांत्रिक कुंडलिनी योग से ही संभव लगता है, साधारण से नहीं। साथ में, अपना शरीर न होने के कारण आत्मा तो कोई इच्छा जाहिर नहीं कर सकती। मतलब कि आत्मा में वह इच्छा उसकी शरीरयुक्त जीवित अवस्था में होनी चाहिए, खासकर उसके मरते समय। इसी को अंतिम इच्छा कहते हैं। इसीलिए इसको बहुत महत्त्व दिया जाता है। उसे पूरा किया जाता है और मरणासन्न व्यक्ति को उसे पूरा करने का वचन दिया जाता है, ताकि उसकी आत्मा उस इच्छा की वजह से भटके न। ये गुत्थियां धीरे-धीरे सुलझती हैं, एकदम से नहीं। मैं भी सपरिवार उन व्यक्ति से मिलने उनकी मरणासन्न अवस्था में थोड़ा देर से पहुंचा था। वे मुझसे बात करना चाहते थे, पर बोल नहीं पा रहे थे। सिर्फ छोटी सी चीख ही उनके मुंह से निकलती थी और वे फिर बेहोश से हो जाते थे। देख तो वे सकते ही नहीं थे। शायद वे कुछ सुन और समझ पा रहे थे, पर देख व बोल नहीं पा रहे थे। उसके दो तीन घंटे बाद ही उनकी आत्मा मुक्त गगन को प्रस्थान कर गई थी। अध्यात्म में बहुत कुछ है। यह तो आइसबर्ग का सिर्फ टिप मात्र है।

कुंडलिनी योग से निर्जीव भी सजीव बन जाता है

दोस्तों मैंने एआई से सजीव प्राणी की एक वाक्य की परिभाषा मांगी तो उसने बताया कि जीवित प्राणी वह होता है जो प्रजनन, विकास, चयापचय, पर्यावरण के प्रति अनुकूलन, उत्तेजनाओं का जवाब और होमियोस्टैसिस को बनाए रखने में सक्षम होता है, जबकि निर्जीव इनमें से किसी भी क्रिया को करने में सक्षम नहीं होते हैं। इस पोस्ट में हम कुंडलिनी योग के माध्यम से यह सिद्ध करेंगे कि ये सभी क्रियाएं निर्जीव में भी होती हैं।

निर्जीव में प्रजनन

अगर निर्जीव में प्रजनन ना होता तो सृष्टि का विकास कैसे होता। फिर तो हमें आकाश भी ग्रह तारों से भरा हुआ ना दिखाई देता। प्रजनन से ही वस्तुओं या जीवो की संख्या में वृद्धि होती है। क्योंकि सृष्टि में अनगिनत निर्जीव वस्तुएं हैं, इसलिए निर्जीव में प्रजनन भी जरूर होता है। वह प्रजनन मूल आकाश अर्थात मूल प्रकृति से होता है। शास्त्रों में भी कहा गया है कि मूल प्रकृति से ही सृष्टि का जन्म होता है। उस मूल आकाश से मूल कणों का जन्म होता है। मूल आकाश को मां समझ लो और मूल कणों को बच्चे। फिर तो वह मूल कण आपसी क्रियाओं और प्रतिक्रियाओं से बढ़ते ही रहते हैं और पूरी सृष्टि के रूप में फैल जाते हैं। दरअसल यह सारी सृष्टि कुछ सौ या हजार मूल कणों से ही बनी होगी। उनकी परस्पर अलग-अलग प्रतिक्रियाओं से अलग-अलग पदार्थ बनते हैं, जिनसे पूरी सृष्टि भर जाती है।

निर्जीवों में चयापचय

एआई की परिभाषा के अनुसार चयापाचय जीवित प्राणियों में होने वाली रासायनिक प्रतिक्रियाओं का समूह है जो ऊर्जा उत्पादन, वृद्धि, विकास और मरम्मत के लिए आवश्यक है। तथाकथित निर्जीव सूर्य में नाभिकीय प्रतिक्रिया से ऊर्जा का उत्पादन होता है। उससे मूल कणों में निरंतर वृद्धि और विकास होता रहता है। इससे सूर्य में सृष्टि निर्माण करने वाले सभी तत्वों का निर्माण पर्याप्त मात्रा में हो जाता है।

निर्जीव में पर्यावरण के प्रति अनुकूलन

किक मारने से केवल कुत्ता ही नहीं भागता बल्कि एक गेंद भी भागती है। आकाशगंगाऐं परिवार की तरह समूह में रहती हैं ताकि नए तारों का निर्माण अच्छे से हो सके। जैसे सजीव घुटन भरी घनी आबादी से भागकर शांति की तरफ जाना चाहते हैं, वैसे ही हवा, पानी जैसी सभी निर्जीव चीजें भी उच्च दबाव से निम्न दबाव वाले क्षेत्र की ओर भागती हैं। मतलब कि निर्जीव पदार्थ भी अपनी बेहतरी के लिए अपने को अनुकूलित कर लेते हैं।

निर्जीव द्वारा उत्तेजनाओं का जवाब

एक धातु का टुकड़ा गर्म होने पर फैलता है। मतलब वह फैल कर अपनी गर्मी को बाहर निकालने की कोशिश करता है या वहां से भागने की कोशिश करता है। वही धातु का टुकड़ा ठंड बढ़ने पर सिकुड़ जाता है। मतलब वह वहीं पर दुबक कर अपनी गर्मी को बचाने की कोशिश करता है। विस्फोट, विद्युत चालन तथा रासायनिक प्रतिक्रियाओं के रूप में अनगिनत उदाहरण हैं, जिनमें निर्जीव सचिवों से भी ज्यादा मात्रा में और ज्यादा तेजी से उत्तेजनाओं का जवाब देते हैं।

निर्जीव द्वारा होमियोस्टैसिस को बनाए रखना

होमियोस्टेसिस का मतलब होता है, जीवन के लिए जरूरी परिस्थितियों को एकसमान बनाए रखना। जैसे कि एक स्वस्थ शरीर का एक निश्चित और एकसमान तापमान होता है, जिसमें शरीर सबसे अधिक कार्यक्षम होता है। इसी तरह इसे अगर निर्जीवों में लें, तो जब तापमान बहुत अधिक बढ़ जाता है, तो बादल घिरने लगते हैं, और वर्षा हो जाती है। इससे वातावरण का तापमान फिर से सामान्य हो जाता है। ग्रीन हाउस गैसें धरती पर एक समान व स्थिर तापमान बनाए रखने में मदद करती हैं। गुरुत्वाकर्षण बल आकाशगंगाओं को स्थिर संरचना बनाए रखने में मदद करता है, जिससे सृष्टि का समुचित विकास सुनिश्चित होता है। ब्रह्मांड के विस्तार बल और गुरुत्वाकर्षण बल का परस्पर संतुलन ब्रह्मांड को जीवित बनाए रखता है।
इस तरह के लीक से हटे हुए या आउट ऑफ बॉक्स थिंकिंग से उपजे तथ्यों से स्पष्ट है कि निर्जीव और सजीव के बीच में

मूलतः कोई अंतर नहीं है। इनको विभाजित करने वाली रेखा असली नहीं बल्कि काल्पनिक है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि निर्जीवों में भी सजीवों की तरह ही अपने स्तर की बेसिक कॉग्निशन होती है। जब किसी आदमी की कुंडलिनी योग से समाधि लगती है, तो उसे उस वस्तु की बेसिक कॉग्निशन का अनुभव हो जाता है। वह एक आदिम अनुभूति होती है, और पूर्ण आत्मज्ञान की परम अनुभूति के बहुत नजदीक होती है। इसीलिए कहते हैं कि परमात्मा तक समाधि से ही पहुंचा जा सकता है।

कुंडलिनी योग से एलियनों से मुलाकात

दोस्तों, आज हम एक अन्य रोचक विषय पर भी चर्चा करने जा रहे हैं – कुंडलिनी योग और एलियनों के बीच संबंध। कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि एलियन केवल निर्जीव पदार्थों के रूप में मौजूद हो सकते हैं। वे सुख-दुख या अच्छा-बुरा महसूस नहीं करते हैं। वे सूर्य, पहाड़, नदी, पत्थर, ग्रह, नक्षत्र आदि के रूप में हमारे आसपास हो सकते हैं, लेकिन हम उन्हें पहचान नहीं पाते हैं।
यह भी संभव है कि उन्होंने खुद को छुपा लिया हो। शायद वे समझ चुके हैं कि सचेत निर्णय केवल दुख और पीड़ा लाते हैं।
इसलिए उन्होंने खुद को इतना विकसित कर लिया है कि उन्हें सोच-समझकर या अहंकार के साथ कोई काम करने की आवश्यकता नहीं है। वे अच्छे और बुरे के बीच भेदभाव भी नहीं करते हैं।
यह भी हो सकता है कि उनकी चेतना अलग-अलग न होकर सामूहिक रूप में हो।
कुछ वैज्ञानिकों का मानना है कि वे कंप्यूटर या एआई जैसे हो सकते हैं। वे जैविक नहीं, बल्कि सेमीकंडक्टर और धातु जैसे अजैविक तत्वों से बने होंगे।
चाहे कुछ भी हो, निर्जीव पदार्थ निश्चित रूप से अपने आप में मौजूद हैं।
यदि ऐसा नहीं होता तो मंगल ग्रह इतना सुंदर क्यों दिखता? वहां कोई जीवन नहीं है।
अगर निर्जीव जगत की शक्ति न होती तो शुक्र जैसे नारकीय ग्रहों में निर्जीव तत्वों की अराजक हलचलों में आश्चर्यजनक शक्ति महसूस नहीं होती।
अगर निर्जीव पदार्थों की शक्ति न होती तो अनंत अंतरिक्ष में निर्जीव पदार्थों की हलचलों से भरा शोरगुल नहीं होता।
बिना उद्देश्य के कोई क्रिया नहीं होती।
इसका मतलब है कि निर्जीव पदार्थों में भी आधारभूत अनुभूति यानी बेसिक कॉग्निशन होती है।
यह अनुभूति निश्चित रूप से समान है, लेकिन फिर भी पदार्थ के प्रकार के अनुसार इसमें तनिक अंतर होता है।
अगर यह बिल्कुल समान होती तो हमें विभिन्न प्रकार के पदार्थों को पहचानना और उनके साथ काम करना असंभव होता, क्योंकि तब वे सभी हमें बिल्कुल एक जैसे दिखाई देते।

किसी आदमी का कोई विशेष स्वभाव अनुभव होने पर हम उसे यह कह कर नहीं नकारते कि यह झूठ है। आदमी का स्वभाव कुदरती या निर्जीव तत्त्वों के स्वभाव से मिलकर बना है। मतलब कि अगर आदमी का स्वभाव सत्य है, तो निर्जीव पदार्थों का स्वभाव भी सत्य होना चाहिए। हां, स्वभाव को सत्य-असत्य मतलब द्वैताद्वैत रूप समझ सकते हैं, क्योंकि हो सकता है कि हम उसके उस स्वभाव को महसूस कर रहे हों, पर वह खुद अपने उस स्वभाव को महसूस न कर पा रहा हो। इसी तरह वायु, जल जैसे जड़ पदार्थों के स्वभाव को भी हमें सत्य-असत्य या द्वैत-अद्वैत ही मानना चाहिए। मतलब कि बेशक हम उन निर्जीव तत्त्वों के स्वभावों को महसूस कर पा रहे हों, पर वे खुद अपने उन स्वभावों को महसूस न कर पा रहे हों। यही द्वैताद्वैत ही असली अद्वैत है।

इसको ऐसे समझ सकते हैं कि सभी कुछ एक जैसा भी है और एकदूसरे से अलग-अलग भी है। यही द्वैत-अद्वैत है और यही सत्य है। पूर्ण द्वैत भी असत्य है, और पूर्ण अद्वैत भी असत्य है। आध्यात्मिक शास्त्र और ऋषि भी ऐसा ही कहते हैं। इससे यह मतलब निकलता है कि एलियन न तो अलग-अलग रूप वाले हैं और न ही एक ही रूप वाले हैं। पर वे दोनों का मिश्रण हैं। मतलब कि एलियन द्वैत-अद्वैत स्वरूप हैं।

इससे यह मतलब भी निकलता है कि हमारे चारों ओर हर जगह किस्म-किस्म के एलियन हैं। यह अलग बात है कि अपने जैसे जैविक एलियनों को हम ढूंढ नहीं पाए हैं, क्योंकि ऐसे एलियन अत्यंत दुर्लभ हैं। कुंडलिनी योग से ही हम प्रकृति के हर एक तत्व पर समाधि लगाकर उसे पूरी गहराई से जान सकते हैं। योग शास्त्रों में वायु पर समाधि सिद्ध हो जाने से वायु का स्वभाव पूरी तरह समझ में आने से वायु की शक्तियां प्राप्त होती है। इसी तरह अग्नि पर समाधि से अग्नि की और जल पर समाधि से जल की या अकाश पर समाधि से आकाश की, आदि आदि। मतलब कि हम अनगिनत पदार्थों के रूप में अनगिनत एलियनों से बात कर सकते हैं, और उनकी तकनीकों को समझ कर हासिल कर सकते हैं। हासिल की भी तो हैं। वायु-एलियन और अग्नि-एलियन की शक्ति समझ कर शक्तिशाली इंजन बनाए हैं। परमाणु-ऐलियन की शक्ति समझ कर नाभिकीय ऊर्जा घर बनाए हैं। आंख-ऐलियन की नकल करके कैमरा बना है।

ऐसे अनगिनत उदाहरण हैं। आध्यात्मिक क्षेत्र को लें तो शरीर-ऐलियन को समझ कर कुंडलिनी तंत्र बना है, जिससे अनगिनत सिद्धियों के साथ कुंडलिनी जागरण को प्राप्त किया है। मतलब साफ प्रतीत होता है कि अंतरिक्ष अन्वेषण की बजाय कुंडलिनी योग से एलियनों से सामना होने की ज्यादा संभावना है।

कुंडलिनी योग और एलियनों के बीच संबंध:

कुंडलिनी योग एक प्राचीन भारतीय योग पद्धति है जो आध्यात्मिक ऊर्जा को जगाने पर केंद्रित है। कुछ लोगों का मानना है कि कुंडलिनी योग का अभ्यास करने से एलियनों के साथ संवाद करने की क्षमता विकसित हो सकती है।
यह विचार इस धारणा पर आधारित है कि कुंडलिनी योग चेतना के उच्च स्तर तक पहुंचने में मदद कर सकता है, जिससे हम अन्य आयामों और वास्तविकताओं से जुड़ सकते हैं।
कुछ लोगों का यह भी मानना है कि कुंडलिनी योग हमें एलियनों की तकनीकों और ज्ञान तक पहुंच प्रदान कर सकता है।

क्या यह सच है?

यह निश्चित रूप से कहना मुश्किल है कि कुंडलिनी योग वास्तव में एलियनों के साथ संवाद करने में मदद कर सकता है या नहीं।
इस दावे का समर्थन करने के लिए कोई वैज्ञानिक प्रमाण नहीं है।
हालांकि, कई लोग हैं जिन्होंने दावा किया है कि उन्होंने कुंडलिनी योग का अभ्यास करने के बाद एलियनों के साथ अनुभव किए हैं।

सांख्य दर्शन का विचार

सांख्य दर्शन कहता है कि सृष्टि कि सभी वस्तुएँ जड़ प्रकृति और चेतन पुरुष के सम्मिलित मिश्रण से बनी हैं। इसका मतलब है कि मिट्टी, पत्थर, हवा, पानी आदि जैसी सभी जड़ समझी जाने वाली प्राकृतिक वस्तुओं में चेतन पुरुष भी विद्यमान है। मतलब सभी वस्तुएँ जीवित या चेतन हैं। तो इन्हीं विभिन्न पुरुष-प्रकृति मिश्रणों को ही विभिन्न प्रकार के एलियन क्यों न कहा जाए। यह एक विचारणीय विषय है।

निष्कर्ष:

कुंडलिनी योग और एलियनों के बीच संबंध एक दिलचस्प और विवादास्पद विषय है।
यह निश्चित रूप से कहना असंभव है कि कुंडलिनी योग वास्तव में एलियनों के साथ संवाद करने में मदद कर सकता है या नहीं।
हालांकि, यह निश्चित रूप से एक ऐसा विषय है जो आगे के अध्ययन और अनुसंधान के योग्य है।

कुण्डलिनी-ध्यान का मनोविज्ञान

मस्तिष्क में कुण्डलिनी का ध्यान

सीधे तौर पर हम मस्तिष्क में कुण्डलिनी के ऊपर ज्यादा देर तक गहरा ध्यान नहीं लगा सकते। ऐसा करने से मस्तिष्क में दबाव बढ़ जाता है, जिससे बेचैनी पैदा होती है, और चक्कर भी आ सकता है। मस्तिष्क के दबाव में होने से रोजमर्रा के काम-काज दुष्प्रभावित होने लगते हैं। याददाश्त घट सी जाती है। सांसारिक कार्यों में मन नहीं लगता। मन व शरीर में थकान जैसी रहती है। सिर घूमता हुआ जैसा महसूस होता है। अनभ्यस्त होने पर इससे मस्तिष्क को हानि पहुँचने का डर भी बना रहता है, जिससे अल्जाईमर जैसे मस्तिष्क के रोग भी पैदा हो सकते हैं।

निचले चक्रों पर कुण्डलिनी का ध्यान

उपरोक्त समस्या का हल चक्र-साधना से किया गया है। इसमें कुण्डलिनी का ध्यान शरीर के निचले चक्रों पर किया जाता है। चक्रों पर ध्यान की मात्रा ऊपर की तरफ बढ़ती रहती है। इसीलिए तो कुण्डलिनी-योगी मूलाधार से प्रारम्भ करते हैं, ताकि धीरे-२ अभ्यस्त हो सकें।

वैदिक संस्कृति में कुण्डलिनी का ध्यान प्रकृति के अन्दर किया जाता था

प्राचीन वैदिक युग में जन-जीवन बहुत अस्त-व्यस्त होता था। बहुत सी समस्याएँ होती थीं। उससे आदमी बहिर्मुखी व भौतिकवादी होता था। कोई मशीनें नहीं होती थीं। सभी काम हाथों से करने पड़ते थे। जंगली जानवरों का आतंक होता था। वैसी परिस्थिति में आम जन-मानस के लिए गहरा ध्यान करना संभव नहीं था। इसीलिए उन्होंने प्रकृति की पूजा करना प्रारम्भ किया, तथा कुण्डलिनी का ध्यान प्राकृतिक पदार्थों के भीतर किया। सूर्यदेव, वायुदेव, अग्निदेव आदि के रूप में इसके बहुत से उदाहरण हैं। उस प्रणाली में कुण्डलिनी मस्तिष्क से सर्वाधिक दूरी पर स्थित होती थी, जिससे उसका ध्यान बहुत सरल होता था। प्रकृति के बीच में पल-बढ़ रहे मनुष्य को उसका लाभ भी अनायास ही मिलता रहता था।

मूर्ति-परम्परा ने ध्यान को और अधिक बढ़ाने में मदद की

धीरे-२ मनुष्य विकसित होता गया, जिससे उसके लिए बहुत सा अतिरिक्त समय उपलब्ध हो गया। उससे मूर्तिवाद का जन्म हुआ। अब मनुष्य प्रकृति से दूर रहकर, एकांत में भी ध्यान लगा सकता था। मूर्ति-ध्यान के स्थान मंदिरों के रूप में उभर आए। देवमूर्ति के ऊपर ध्यान अधिक लगता था, क्योंकि वह मस्तिष्क के अधिक निकट होती थी, और उसकी बनावट मनुष्य की तरह होती थी।

कुण्डलिनीयोग की शुरुआत से ध्यान को पंख लग गए

कालान्तर में मनुष्य ने इतना अधिक विकास कर लिया था कि उसके द्वारा जुटाए गए अतिरिक्त अन्न से व अतिरिक्त संसाधनों से उसके भण्डार भर गए थे। इससे वह लम्बे समय तक गहन ध्यान-साधना कर सकता था। इसलिए कुण्डलिनी-योग की खोज हुई। उसमें शरीर के विभिन्न भागों/चक्रों पर कुण्डलिनी का ध्यान करना होता था। कुण्डलिनी की मस्तिष्क से दूरी बहुत अधिक घट गई थी, और कुण्डलिनी व्यक्ति के अपने ही शरीर में पहुँच गई थी। इससे ध्यान को असीमित ऊँचाई मिली, जो सहस्रार चक्र में अपने चरम पर पहुँच गई, कुण्डलिनी-जागरण के रूप में।

ध्यान सदैव मस्तिष्क में ही लगता है

चाहे कहीं भी कुण्डलिनी का ध्यान कर लो, वह होता तो मस्तिष्क में ही है, क्योंकि मस्तिष्क ही सभी अनुभवों का स्थान है। यह अलग बात है कि कुण्डलिनी मस्तिष्क/सहस्रार के जितनी नजदीक होती है, उस पर ध्यान उतना ही मजबूत लगता है।

आज के युग में हर प्रकार के व्यक्ति के लिए उपयुक्त साधना-पद्धति मौजूद है

आज विविधताओं वाला युग है। कई लोग बहुत व्यस्त हैं। उनके लिए वैदिक संस्कृति वाला कुण्डलिनी-ध्यान (कर्मयोग) उपलब्ध है। जिनके पास थोड़ा अतिरिक्त समय है, उनके लिए देव-मूर्तियों पर ध्यान लगाने के लिए बहुत से मंदिर मौजूद हैं। जिनके पास सर्वाधिक अतिरिक्त समय है, उनके लिए पूर्ण विकसित कुण्डलिनी योग भी उपलब्ध है।

कुण्डलिनी व मूर्तिपूजा के बीच में परस्पर सम्बन्ध

कुण्डलिनी को क्रियाशील व जागृत करने के लिए कुण्डलिनी के साथ बहुत लम्बे समय तक सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध बनाना पड़ता है। अधिकांशतः ऐसा एक ही जीवनकाल में संभव नहीं हो पाता। इसलिए आवश्यक है कि कुण्डलिनी के स्मरण वाला संस्कार एक आदमी को उसके जन्म से ही मिल जाए। यहाँ तक कि जब वह माता के गर्भ में हो, तभी से मिलना शुरू हो जाए। इसको संभव बनाने के लिए ही इष्टदेव को कल्पित किया गया है। वह कल्पित रूप सदा से सभी के लिए एक जैसा होता है। इससे उस इष्टदेव को मानने वाले परिवार में उस इष्टदेव के स्मरण से सम्बंधित संस्कार वंश परम्परा के साथ पीढ़ी दर पीढ़ी बढ़ता रहता है। इसीलिए शैव सम्प्रदाय के लोगों के लिए शिव के रूप का ध्यान करना आसान हो जाता है। उसी ध्यान-शक्ति से एक शैव के मन में बसने वाला शिव उसकी कुण्डलिनी बन जाता है, जो अंततः कुण्डलिनी-जागरण के रूप में जीवंत भी हो सकता है। यदि दूरदर्शी ऋषियों के द्वारा शिव को निश्चित रूप न दिया गया होता, तो शिव का ध्यान उत्तरोत्तर न बढ़कर बार-२ टूटता रहता।

मान लो, किसी आदमी नि शिव को जटाधारी माना होता, और उसके पुत्र ने शिव को जटाहीन माना होता, तो क्या होता? वैसे में पिता के द्वारा अर्जित ध्यान पुत्र को प्राप्त न होता। वह अपना ध्यान स्वयं ही शुरू से इकट्ठा करता, जिससे उसे बहुत थोड़ा ही लाभ मिलता। उसे जो लाभ मिलता, वह यह होता कि उससे उसके जीवन में अल्प मात्रा में ही अद्वैत व अनासक्ति-भाव उत्पन्न होते। उससे प्रचंड अनासक्ति व अद्वैत के साथ कुण्डलिनी-जागरण न मिलता।

देवताओं में सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण देव शंकर हैं। इसीलिए उन्हें देवों के देव महादेव कहा जाता है। उन्हें एक निश्चित रूप प्रदान किया गया है। उनके गले में सर्प की माला है। उनके सिर पर लम्बी-२ जटाएं हैं। उनके मस्तक पर आधा चन्द्रमा विराजमान है। उनकी जटाओं से गंगा नदी निकल रही है। उनके माथे पर तीन समानांतर रेखाओं के रूप में तिलक है, जिसे त्रिपुंड कहा जाता है। कई जगह उनके भ्रूमध्य में खुला हुआ तीसरा नेत्र भी दिखाया जाता है। वे भस्म से लिपटे हुए हैं। उनके एक हाथ में त्रिशूल है, और एक हाथ में डमरू है। वे बैल की सवारी करते हैं। वे बाघ का चर्म ही ओढ़ते हैं, अन्य कोई वस्त्र नहीं पहनते हैं। वे सुन्दर हैं। उनके नयन-नक्श संतुलित व त्रुटिरहित हैं। उनका मुख कान्तिमान व आकर्षक है। उनका शरीर सुडोल व संतुलित है। वे मध्यम गोरे रंग के हैं। उनकी चाल-ढाल अद्वैत, अनासक्ति, व वैराग्य से भरी हुई है।

इसी तरह अन्य देवी-देवताओं को भी निश्चित रूप व आकार प्रदान किए गए हैं। साथ में, उन्हें निश्चित भाव-भंगिमाएं व आचार-विचार भी प्रदान किए गए हैं। गणेश को मूषक की सवारी करने वाला, लड्डू खाने वाला, व हाथी के जैसे मुख वाला बताया गया है। इसी तरह, नौ देवियों को भी भिन्न-२ परिचय दिए गए हैं।

इसी सिद्धांत के अनुसार अपने पूर्वज या पारिवारिक वृद्ध (पितामह आदि) को गुरु बनाना अधिक लाभप्रद है। क्योंकि एक व्यक्ति उनके साथ जन्म से लेकर परिचित व सौहार्दपूर्ण बना होता है, इसलिए उन्हें मन में बैठाना सर्वाधिक सरल होता है। वही मानसिक मूर्ति फिर लगातार के अभ्यास से कुण्डलिनी बन कर क्रियाशील व जागृत हो सकती है।

देव-मूर्ति पुराने मित्रों, परिचितों व पूर्वजों से भी जुड़ी होती है। जब कोई उन चिर परिचितों की समकालीन देव-मूर्ति से पुनः संपर्क साधता है, तब उन चिर-परिचितों की याद पुनः ताजा हो जाती है। उनमें से सर्वाधिक प्रभावशाली स्मरण बार-२ के अभ्यास से स्थायी स्मरण (कुण्डलिनी) के रूप में मन में उभर सकता है। विज्ञान की भाषा में इसे कंडीशंड रिफ्लेक्स (conditioned reflex) कहते हैं। इसके अनुसार जब दो वस्तुएं मन में एकसाथ बैठ गई हों, तो दोनों वस्तुएं आपस में जुड़ जाती हैं। जब कभी एक वस्तु का स्मरण किया जाता है, तो उससे जुड़ी हुई दूसरी वस्तु का स्मरण स्वयं ही हो जाता है। यह उस जैविक घटना की तरह है, जब एक गाय अपने बछड़े को देखकर अपना दूध छोड़ने लगती है। इस प्रकार से देव-मूर्तियाँ सामाजिक कंडिशनर (social conditioner) या सामाजिक संपर्कसूत्र (social link) का काम करती हैं। अपने प्रिय व परिचित जनों की याद बनाए रखने में ये अहम् भूमिका निभाती हैं। यही बात अन्य सभी निर्धारित किए गए धार्मिक विधि-विधानों के सम्बन्ध में भी लागू होती है। यद्यपि देव-मूर्तियाँ इनमें मुख्य हैं, क्योंकि वे मानवाकार, सुन्दर, सहज सुलभ, सर्वसुलभ, व आकर्षक होती हैं।

अगर किसी को मूर्ति पूजा से प्रत्यक्ष लाभ नहीं दिखता है, तो भी इसकी मदद से ध्यान और गहरी भावना की एक अच्छी आदत पड़ जाती है। यह मानवता के समग्र विकास में मदद करता है। यह सब प्रेमयोगी वज्र के साथ हुआ, तभी

तो वह क्षणिक आत्मज्ञान व क्षणिक कुण्डलिनी जागरण को अनुभव कर पाया। दरअसल, वैदिक काल में देवताओं को उनके शुद्ध प्राकृतिक रूप में पूजा जाता था। बाद में, इनमें से कई देवताओं को मानव समाज में चल रहे सामाजिक सुधारों के साथ मानव रूप दिया गया, जो ज्ञान-विज्ञान सम्मत भी है।

प्राकृतिक चीजें अद्वैतशाली व अनासक्त होती हैं, तभी तो प्रकृति के बीच में आनंददायक शान्ति का अनुभव होता है। वास्तव में, देव-मूर्तियाँ घर के सीमित स्थान के लिए निर्मित किए गए, विराट प्रकृति के सूक्ष्म रूप ही हैं। शास्त्रों के वचनों से व वैज्ञानिक दर्शन "शरीरविज्ञान दर्शन" से भी यह प्रमाणित ही है कि जो कुछ भी इस बाह्य व विराट प्रकृति में है, वह सभी कुछ इस मानव शरीर के अन्दर भी वैसा ही है।

अब बात आती है, धर्म-परिवर्तन के बारे में। उपरोक्त तथ्यों के आधार पर तो अपने धर्म का त्याग कभी नहीं करना चाहिए। क्योंकि धर्म परिवर्तन करने से अपने कुलधर्म से जुड़ी हुई चिर-परिचित लोगों व वस्तुओं की यादें गायब हो जाती हैं, और कुण्डलिनी-विकास का अच्छा अवसर हाथ से छूट जाता है। शास्त्रों में भी आता है, श्रेयो स्वधर्मो विगुणोपि, परधर्मो भयावहः। अर्थात, अपना धर्म कम गुणों वाला होने पर भी कल्याणकारी है, दूसरों का धर्म तो भयावह है। इसका यह अर्थ नहीं है कि कट्टर धार्मिक होना चाहिए, या दूसरे धर्मों को नहीं मानना चाहिए। बल्कि इसका अर्थ है कि सभी मानवीय धर्मों को मानते हुए, अपने धर्म को ही मुख्य बना कर रखना चाहिए। यह ध्यान में रहना चाहिए कि यह बात योग पर लागू नहीं होती, क्योंकि योग कोई विशेष धर्म नहीं है। योग तो एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान है, जो सभी धर्मों का एक अभिन्न अंग है।

कुण्डलिनी के साथ पशु-प्रेम

यह सर्वविदित है कि कुण्डलिनी प्रेम का प्रतीक है। कुण्डलिनी समर्पण का प्रतीक है। कुण्डलिनी श्रद्धा-विश्वास का प्रतीक है। कुण्डलिनी स्वामीभक्ति का प्रतीक है। कुण्डलिनी सेवाभाव का प्रतीक है। कुण्डलिनी परहितकारिता का प्रतीक है। कुण्डलिनी आज्ञापालन का प्रतीक है। कुण्डलिनी सहनशक्ति का प्रतीक है। ये कुण्डलिनी के साथ रहने वाले मुख्य गुण हैं। अन्य भी बहुत से गुण कुण्डलिनी के साथ विद्यमान रहते हैं। यदि हम गौर करें, तो ये सभी मुख्य गुण पशुओं में भी विद्यमान होते हैं। इनमें से कई गुण तो उनमें मनुष्यों से भी ज्यादा मात्रा में प्रतीत होते हैं। इससे यह अर्थ निकलता है कि पशु कुण्डलिनी-प्रेमी होते हैं। आइये, हम इसकी विवेचना करते हैं।

कुण्डलिनी स्वामीभक्ति का प्रतीक है

आजतक कुत्ते से ज्यादा स्वामीभक्ति किसी प्राणी में नहीं देखी गई है। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं, जब कुत्ते ने अपने मालिक के लिए जान तक दे दी है। इसका अर्थ है कि कुत्ते के मन में अपने मालिक के व्यक्तित्व की छवि स्थाई और स्पष्ट रूप से बसी हुई होती है। वह छवि कुत्ते के मन के लिए एक खूंटे की तरह काम करती है। इससे कुत्ता आपने विचारों और क्रियाकालापों के प्रति अनासक्ति भाव या साक्षी भाव प्राप्त करता रहता है। उससे कुत्ते को आनंद प्राप्त होता रहता है। उस कुण्डलिनी छवि के महत्त्व को वह कभी नहीं भूलता, यहाँ तक कि उसके लिए जान तक दे सकता है। इसके विपरीत, बहुत से मनुष्य अपने मालिक के प्रति वफादारी नहीं निभा पाते। इससे सिद्ध हो जाता है कि कुत्ता मनुष्य से भी ज्यादा कुण्डलिनी प्रेमी होता है।

कुण्डलिनी सेवा भाव का प्रतीक है

उदाहरण के लिए, गाय को ही लें। वह हमें दूध देकर हमारी सेवा करती है। अधिकतर गौवें अपनी देख-रेख करने वाले मालिक के पास ही दूध देती हैं। दूसरा कोई जाए, तो वे जोर की लात भी टिका सकती हैं। इसका सीधा सा अर्थ है कि गाय के मन में अपने मालिक की छवि बस जाती है, जो उसके लिए कुण्डलिनी का काम करती है। एक आदमी तो अपने मालिक को कभी भी छोड़ सकता है, परन्तु गाय ऐसा कभी नहीं करती है। इससे भी यही सिद्ध होता है कि पशु मनुष्य से भी ज्य्यादा नैष्ठिक कुण्डलिनी भक्त होते हैं।

यह अलग बात है कि दिमाग की कमी के कारण पशु मनुष्य की तरह मालिक (कुण्डलिनी) को बारम्बार बदल भी नहीं सकता। अधिकाँश मनूश्य तो अपने दिमाग पर इतना घमंड करने लग जाते हैं कि कुण्डलिनी के परिपक्व होने से पहले ही उसे बदल देते हैं। ऐसी स्थिति से तो पशु वाली स्थिति ही बेहतर प्रतीत होती है। एक बात और है। पालतु पशु को जब आदमी द्वारा संरक्षण व भोजन प्राप्त होता है, तभी उसे कुण्डलिनी को ज्यादा बढ़ाने का अवसर मिलता है।

कुण्डलिनी परहितकारिता का प्रतीक है

इसी तरह, विभिन्न पशु-पक्षी विभिन्न प्रकार के उत्पाद देकर मनुष्य का भला करते रहते हैं। ऐसा उनके मनुष्य के प्रति प्रेम से ही सम्भव हो सकता है। माता प्रेम के वशीभूत होकर ही अपने बच्चे को दूध पिलाती है। यह भी सत्य है कि प्रेम केवल कुण्डलिनी से ही होता है। यह अलग बात है कि पशु उसे बोलकर बता नहीं सकता। यदि प्रेम न भी हो, तो भी किसी का हित करते हुए स्वयं ही उससे प्रेम हो जाता है। यहाँ तक कि पेड़-पौधे भी कुण्डलिनी-प्रेमी होते हैं, क्योंकि वे भी सदैव परहित में लगे रहते हैं।

कुण्डलिनी आज्ञापालन का प्रतीक है

हम उसी की आज्ञा का पालन सबसे अधिक तत्परता के साथ करते हैं, जो हमारे मन में सबसे अधिक बसा होता है, जो हमें सबसे अधिक महत्त्वशाली लगता है, और जिस पर हमें सबसे अधिक विश्वास होता है। वही हमारी कुण्डलिनी के रूप में होता है। वही आनंद का स्रोत भी होता है। अपनी मालिक की आज्ञा का पालन कुत्ते बहुत बखूबी करते हैं। कुत्ते में तो दिमाग भी इंसान से कम होता है। इसका सीधा सा अर्थ है कि कुत्ता केवलमात्र कुण्डलिनी से ही आज्ञापालन के लिए प्रेरित होता है, अन्य लॉजिक से नहीं। आदमी तो दूसरे भी बहुत से लॉजिक लगा लेता है। इसका सीधा सा अर्थ है कि एक कुत्ता भी कुण्डलिनी की अच्छी समझ रखता है।

इन बातों का उद्देश्य मनुष्य को गौण सिद्ध करना नहीं है। इसमें कोई संदेह नहीं है कि मनुष्य जीव-विकास की सीढ़ी पर सबसे ऊपर है। यहाँ बात केवल कुण्डलिनी के बारे में हो रही है।

कुण्डलिनी कर्तव्यपालन का प्रतीक है

एक बैल यदि अस्वस्थ भी हो, तो भी वह खेत में हल चलाने से पीछे नहीं हटता। इसी तरह, यदि उसका मूड ऑफ़ हो, तो भी वह अपने कदम पीछे नहीं हटाता। यह अलग बात है, यदि वह हल चलाते-२ हांफने लगे या नीचे गिर जाए। इसका सीधा सा अर्थ है कि बैल भी कुण्डलिनी प्रेमी होता है। उसका रोजमर्रा का काम व उसके मालिक का व्यक्तित्व उसके मन में एक मजबूत कुण्डलिनी के रूप में बस जाता है, जिसे वह नजरअंदाज नहीं कर पाता। अपने आनंद के स्रोत को भला कौन बुद्धिमान प्राणी छोड़ना चाहे। इसी तरह, सहनशक्ति के मामले में बभी समझ लेना चाहिए।

पशुओं के कुण्डलिनी प्रेम के बारे में प्रेमयोगी वाज्र का आपना अनुभव

उसका ब्बच्पन पालतु पशुओं से भरे-पूरे परिवार में बीता था। पशुओं के मन के भाव पढ़ने में उसे बहुत मजा आता था। जंगल में बैलों का खेल-२ में आपस में भिड़ना उसे रोमांचित कर देता था। मवेशियों का जंगल के घास से पेट भर जाने के बाद अपने बाड़े की तरफ दौड़ लगाना एक अलग ही रोमांच पैदा करता था। एक गाय बड़ी नटखट, चंचल व साथ में दुधारू भी थी। वह एक नेता की तरह सभी मवेशियों के आगे-२ चला करती थी। सभी मवेशी उसे सींग मारने को आतुर रहते थे, इसलिए वह अकेले में ही चरा करती थी। वह जंगल के डर से उनकी नजरों से दूर भी नहीं जाती थी। उसकी बछिया भी वैसी ही निकली। वह देखने में भी बहुत सुन्दर थी। जंगल से बाड़े की तरफ पहाड़ी से नीचे उतरते समय वह पूंछ खड़ी करके बड़ी तेजी से कुदकते हुए भागती, और कुछ दूर जाकर पीछे से आने वाले मवेशियों का इन्तजार करते हुए खड़ी होकर बार-२ गर्दन मोड़कर पीछे देखने लग जाती। जब वे नजदीक आते, तब फिर से दौड़ पड़ती।

जब प्रेमयोगी वज्र की कुण्डलिनी बलवान होती थी, तब सभी मवेशी उसके आसपास चरने के लिए आ जाया करते थे। कोई मवेशी उसे कान टेढ़े करके बड़े आश्चर्य से व प्रेम से देखने लग जाते थे। कई तो उसे चाटने भी लग जाते थे। वे उसे बार-२ सूंघते, और आनंदित हो जाते। शायद उन्हें कुण्डलिनी के साथ विद्यमान सबलीमेटिड वीर्य की खुशबू भी उसके रोमछिद्रों से निकली हुई महसूस होती थी। कुण्डलिनी जागरण के आसपास (प्राणोत्थान के दौरान) भी पशुओं के संबंध में उसका ऐसा ही अनुभव रहा। कई बार तो खूंटे से बंधीं कमजोर दिल वाली भैंसें उसे अचानक अपने पास पाकर डर सी भी जाती थीं, और फिर अचानक प्यार से सूंघने लग जाती थीं। ज्यादातर ऐसा उन्हीं के साथ होता था, जो क्रोधी, सींग मारने वाली, और दूध देने में आनाकानी करने वाली होती थीं। इसका सीधा सा मतलब है कि वे कुण्डलिनी से कम परिचित होती थीं।

पशुओं के बीच में रहने से कुण्डलिनी विकास

प्रेमयोगी वज्र ने यह महसूस किया कि पशुओं, विशेषकर जंगल में खुले घूमने वाले, पालतु, व गाय जाति के मवेशियों के बीच में रहकर कुण्डलिनी ज्यादा स्पष्ट रूप से विकसित हो जाती थी। पशु स्वभाव से ही प्रकृति प्रेमी होते हैं। प्रकृति में तो हर जगह अद्वैतरूपा कुण्डलिनी विद्यमान है ही। इसलिए कुण्डलिनी प्रेमी को पशुओं से भी प्रेम करना चाहिए।

कुंडलिनी योग हिंदु धर्म रूपी पेड़ पर उगने वाला मीठा फल है, और फल तभी तक है, जब तक पेड़ है

दोस्तों, यह पोस्ट शांति के लिए और अल्पसंख्यकों की सुरक्षा के लिए समर्पित है। क्योंकि कुंडलिनी योग विशेषरूप से हिंदु धर्म से जुड़ा हुआ है, इसीलिए इसको कतई भी अनदेखा नहीँ किया जा सकता। मैं वैसा बनावटी और नकली योगी नहीँ हूँ कि बाहर से योग-योग करता फिरूँ और योग के मूलस्थान हिंदूवाद पर हो रहे अत्याचार को अनदेखा करता रहूँ। अभी हाल ही में इस्लामिक आतंकियों ने कश्मीर में एक स्कूल में घुसकर बाकायदा पहचान पत्र देखकर कुछ हिंदुओं-सिखों को मार दिया, और मुस्लिम कर्मचारियों को घर जाकर नमाज पढ़ने को कहा। इसके साथ ही, बांग्लादेश में मुस्लिमों की भीड़ द्वारा हिंदुओं और उनके धर्मस्थलों के विरुद्ध व्यापक हिंसा हुई। उनके सैकड़ों घर जलाए गए। उन्हें बेघर कर दिया गया। कई हिंदुओं को जान से मार दिया गया। जेहादी भीड़ मौत का तांडव लेकर उनके सिर पर नाचती रही। सभी हिंदु डर के साए में जीने को मजबूर हैं। मौत से भयानक तो मौत का डर होता है।

यह असली मौत से पहले ही जिंदगी को खत्म कर देता है। इन कट्टरपंथियों के दोगलेपन की भी कोई हद नहीँ है। हिंदुओं के सिर पर तलवार लेके खड़े हैं, और उन्हीं को बोल रहे हैं कि शांति बनाए रखो। भई जब मर गए तो कैसी शान्ति। हिंसा के विरुद्ध कार्यवाही करने के बजाय हिंसा को जस्टिफाई किया जा रहा है। कहा जा रहा है कि कुरान का अपमान हुआ, इस्लाम का अपमान हुआ, पता नहीँ क्या-2। वह भी सब झूठ और साजिश के तहत। फेसबुक पर झूठी पोस्ट वायरल की जा रही है। पुलिस और अन्य सुरक्षा एजेंसियां चुपचाप मूकदर्शक बनी हुई हैं। उनके सामने भी हिंसा हो रही है। धार्मिक हिंसा के विरुद्ध सख्त अंतरराष्ट्रीय कानून बनाए जाने की सख्त जरूरत है। दुनियादारी मानवीय नियम-कानूनों से चलनी चाहिए। किसी भी धर्म में कट्टरवाद बर्दाश्त नहीं होना चाहिये। सभी धर्म एक-दूसरे की ओर उंगली दिखाकर अपने कट्टरवाद को उचित ठहराते हुए उसे जस्टिफाई करते रहते हैं। यह रुकना चाहिए। कट्टरवाद के खिलाफ खुल कर बोलना चाहिए। मैं जो आज आध्यात्मिक अनुभवों के शिखर के करीब पहुंचा हूँ, वह कट्टरपंथ के खिलाफ बोलते हुए और उन्मुक्त जीवन जीते हुए ही पहुंचा हूँ। कई बार तो लगता है कि पश्चिमी देशों की हथियार निर्माता लॉबी के हावी होने से ही इन हिंसाओं पर इतनी अंतरराष्ट्रीय चुप्पी बनी रहती है। इस्कॉन मंदिर को गम्भीर रूप से क्षतिग्रस्त किया गया, भगवान की मूर्तियां तोड़ी गईं, और कुछ इस्कॉन अनुयायियों की बेरहमी से हत्या की गई। सबको पता है कि यह सब पाकिस्तान ही करवा रहा है। इधर दक्षिण एशिया में बहुत बड़ी साजिश के तहत हिंदुओं का सफाया हो रहा है, उधर पूरा अंतरराष्ट्रीय समुदाय चुप, संयुक्त राष्ट्र संघ चुप, मानवाधिकार संस्थाएँ चुप। क्या हिंदुओं का मानवाधिकार नहीँ होता? क्या हिंदु जानवर हैँ? फिर यूएनओ की पीस कीपिंग फोर्स कब के लिए है। हिंदुओं के विरुद्ध यह साजिश कई सदियों से है, इसीलिए तो पाकिस्तान और बांग्लादेश में हिंदुओं की जनसँख्या कई गुणा कम हो गई है, और आज विलुप्ति की कगार पर है, पर मुसलमानों की जनसंख्या कई गुना बढ़ी है। अफगानिस्तान और म्यांमार में भी हिंदुओं के खिलाफ ऐसे साम्प्रदायिक हमले होते ही रहते हैं। यहाँ तक कि भारत जैसे हिन्दुबहुल राष्ट्र में भी अनेक स्थानों पर हिंदु सुरक्षित नहीं हैं, विशेषकर जिन क्षेत्रों में हिन्दु अल्पसंख्यक हैं। आप खुद ही कल्पना कर सकते हैं कि जब भारत जैसे हिन्दुबहुल देश के अंदर और उसके पड़ोसी देशों में भी हिंदु सुरक्षित नहीं हैं, तो 50 से ज्यादा इस्लामिक देशों में हिंदुओं की कितनी ज्यादा दुर्दशा होती होगी। पहले मीडिया इतना मजबूत नहीं था, इसलिए दूरपार की दुनिया ऐसी साम्प्रदायिक घटनाओँ से अनभिज्ञ रहती थी। पर आज तो अगर कोई छींकता भी है, तो भी ऑनलाइन सोशल मीडिया में आ जाता है। इसलिए आज तो जानबूझकर दुनिया चुप है। पहले संयुक्त राष्ट्र संघ जैसी संस्थाएँ नहीं होती थीं। पर आज भी ये संस्थाएँ न होने की तरह ही लग रही हैं, क्योंकि ये अल्पसंख्यकों को कोई सुरक्षा नहीँ दे पा रही हैं। वैसा बोस भी क्या, जो अपने मातहतों को काबू में न रख सके। मुझे तो यह दिखावे का यूएनओ लगता है। उसके पास शक्ति तो कुछ भी नहीँ दिखती। क्यौँ वह नियम नहीं बनाता कि कोई देश धर्म के आधार पर नहीँ बन सकता। आज के उदारवादी युग में धर्म के नाम पर राष्ट्र का क्या औचित्य है। धार्मिक राष्ट्र की बात करना ही अल्पसंख्यक के ऊपर अत्याचार है, लागू करना तो दूर की बात है। जब एक विशेष धार्मिक राष्ट्र का मतलब ही अन्य धर्मों पर अत्याचार है, तो यूएनओ इसकी इजाजत कैसे दे देता है। यूएनओ को चाशनी में डूबा हुआ खंजर क्यों नहीं दिखाई देता। प्राचीन भारत के बंटवारे के समय आधा हिस्सा हिंदुओं को दिया गया, और आधा मुसलमानों को। पर वस्तुतः हिंदुओं को तो कोई हिस्सा भी नहीं मिला। दोनों हिस्से मुसलमानों के हो गए लगते हैं। आज जिसे भारत कहते हैं, वह भी दरअसल हिंदुओं का नहीं है। दुनिया को हिन्दुओं का दिखता है, पर है नहीँ। यह एक बहुत बड़ा छलावा है, जिसे दुनिया को समझना चाहिए। भारत में एक विशेष धर्म को अल्पसंख्यक के नाम से बहुत से विशेषाधिकार प्राप्त हैं, जिसका ये खुल कर दुरुपयोग करते हैं, जिसकी वजह से आज भारत की अखंडता और संप्रभुता को खतरा पैदा हो गया लगता है। पूरी दुनिया में योग का गुणगान गाया जाता है, अंतरराष्ट्रीय योग दिवस मनाया जाता है, पर जिस धर्म से योग निकला है, उसे खत्म होने के लिए छोड़ दिया गया है। बाहर-बाहर से योग का दिखावा करते हैं। उन्हें यह नहीं मालूम कि यदि हिंदु धर्म नष्ट हो गया, तो योग भी नहीं बच पाएगा, क्योंकि मूलरूप में असली योग हिंदु धर्म में ही है। पतंजलि योगसूत्रों पर जगदप्रसिद्ध और गहराई से भरी हुई पुस्तक लिखने वाले एडविन एफ. ब्रयांट लिखते हैं कि हिंदू धर्म, विशेषकर इसके ग्रँथ (मुख्यतया पुराण) ही योग का असली आधारभूत ढांचा है, जैसे अस्थिपंजर मानव शरीर का आधारभूत ढांचा होता है। योग तो उसमें ऐसे ही सतही है, जैसे मानवशरीर में चमड़ी। जैसे मानव को चमड़ी सुंदर और आकर्षक लगती है, वैसे ही योग भी। पर अस्थिपंजर के बिना चमड़ी का अस्तित्व ही नहीँ है। इसलिए योग को गहराई से समझने के लिए हिन्दु धर्म विशेषकर पुराणों को गहराई से समझना पड़ेगा। इसीलिए योग को बचाने के लिए हिन्दु धर्म और उसके ग्रन्थों का अध्ययन और उन्हें संरक्षित करने की

जरूरत है। उनकी पुस्तक पढ़ कर लगता है कि उन्होंने कई वर्षों तक कड़ी मेहनत करके हिन्दु धर्म, विशेषकर पुराणों को गहराई से समझा है, उसे अपने जीवन में उतारा है। मैंने भी हिंदु धर्म का भी गहराई से अध्ययन किया है, और योग का भी, इसलिए मुझे पता है। कुछ धर्म तो हिंदु धर्म का विरोध करने के लिए ही बने हुए लगते हैं। हिंदु धर्म पूरी तरह से वैज्ञानिक है। असली धर्मनिरपेक्षता हिन्दु धर्म में ही समाहित है, क्योंकि इसमें दुनिया के सभी धर्म और आचार-विचार समाए हुए हैं। यहां तक कि एक मुस्लिम मौलवी और जमीयत उलेमा हिंद के नेता, मुफ्ती मोहम्मद इलियास कासमी ने भी भगवान शिव को इस्लाम के पहले दूत के रूप में संदर्भित किया है। ज्यादा बताने की जरूरत नहीं है। समझदारों को इशारा ही काफी होता है। जिन धर्मों को अपने बढ़ावे के लिए हिंसा, छल और जबरदस्ती की जरूरत पड़े, वे धर्म कैसे हैं, आप खुद ही सोच सकते हैं। मैंने इस वेबसाइट में हिंदु धर्म की वैज्ञानिकता को सिद्ध किया है। अगर किसी को विश्वास न हो तो वह इस वेबसाइट का अध्ययन कर ले। मैं यहाँ किसी धर्म का पक्ष नहीं ले रहा हूं, और न ही किसी धर्म की बुराई कर रहा हूँ, केवल वैज्ञानिक सत्य का बखान कर रहा हूं, अपनी आत्मा की आवाज बयाँ कर रहा हूँ, अपने कुंडलिनी जागरण के अनुभव की आवाज को बयाँ कर रहा हूँ, अपने आत्मज्ञान के अनुभव की आवाज को बयाँ कर रहा हूँ, अपने पूरे जीवन के आध्यात्मिक अनुभवों की आवाज को बयां कर रहा हूँ, अपने दिल की आवाज को बयां कर रहा हूँ। मैं तो कुछ भी नहीँ हूँ। एक आदमी क्या होता है, उसका तर्क क्या होता है, पर अनुभव को कोई झुठला नहीं सकता। प्रत्यक्ष अनुभव सबसे बड़ा प्रमाण होता है। आज इस्कॉन जैसे अंतरराष्ट्रीय हिन्दु संगठन की पीड़ा भी किसी को नहीं दिखाई दे रही है, जबकि वह पूरी दुनिया में फैला हुआ है। मैंने उनकी पीड़ा को दिल से अनुभव किया है, जिसे मैं लेखन के माध्यम से अभिव्यक्त कर रहा हूँ। यदि हिंदु धर्म को हानि पहुंचती है, तो प्रकृति को भी हानि पहुंचती है, धरती को भी हानि पहुंचती है। प्रकृति-पूजा और प्रकृति-सेवा का व्यापक अभियान हिंदु धर्म में ही निहित है। देख नहीँ रहे हो आप, दुनिया के देशों के बीच किस तरह से घातक हथियारों की होड़ लगी है, और प्रदूषण से किस तरह धरती को नष्ट किया जा रहा है। धरती को और उसके पर्यावरण को यदि कोई बचा सकता है, तो वह हिंदु धर्म ही है। भगवान करे कि विश्व समुदाय को सद्बुद्धि मिले।

कुछ लेखक अनुमोदित साहित्यिक पुस्तकें-

1) कुण्डलिनी विज्ञान- एक आध्यात्मिक मनोविज्ञान (पुस्तक 1,2,3 और 4)

2) स्वयंप्रकाशन व वैबसाईट निर्माण की कला

3) कुण्डलिनी रहस्योद्घाटित- प्रेमयोगी वज्र क्या कहता है

4) बहुतकनीकी जैविक खेती एवं वर्षाजल संग्रहण के मूलभूत आधारस्तम्भ- एक खुशहाल एवं विकासशील गाँव की कहानी, एक पर्यावरणप्रेमी योगी की जुबानी

5) ई-रीडर पर मेरी कुण्डलिनी वैबसाईट

6) शरीरविज्ञान दर्शन- एक आधुनिक कुण्डलिनी तंत्र (एक योगी की प्रेमकथा)

7) श्रीकृष्णाज्ञाभिनन्दनम

8) सोलन की सर्वहित साधना

9) योगोपनिषदों में राजयोग

10) क्षेत्रपति बीजेश्वर महादेव

11) देवभूमि सोलन

12) मौलिक व्यक्तित्व के प्रेरक सूत्र

13) **बघाटेश्वरी माँ शूलिनी**

14) **म्हारा बघाट**

15) **भाव सुमन: एक आधुनिक काव्यसुधा सरस**

16) **अकेले का नाच**

17) **संभोग से कुंडलिनी जागरण तक**

18) **विपासना और कुंडलिनी- इक दूजे के लिए**

19) **ब्लैकहॉल की योगसाधना**

20) **क्वान्टम विज्ञान व अन्तरिक्ष विज्ञान में योग**

21) **पुराण पहेली**

22) **दिव्य मूंछ पुराण स्तोत्र**

इन उपरोक्त पुस्तकों का वर्णन एमाजोन, ऑथर सेन्ट्रल, ऑथर पेज, प्रेमयोगी वज्र पर उपलब्ध है। इन पुस्तकों का वर्णन उनकी निजी वैबसाईट https://demystifyingkundalini.com/shop/ के वैबपेज "शॉप (लाईब्रेरी)" पर भी उपलब्ध है। साप्ताहिक रूप से नई पोस्ट (विशेषतः कुण्डलिनी से सम्बंधित) प्राप्त करने और नियमित संपर्क में बने रहने के लिए कृपया इस वैबसाईट,"https://demystifyingkundalini.com/" को निःशुल्क रूप में फोलो करें/इसकी सदस्यता लें।

सर्वत्रं शुभमस्तु